CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्तिपात भाग २

शिवसूत्रप्रबोधिनी

प्रणेता

श्री अभिनव गुप्त

: टीकाकार :

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

श्री स्वामी विष्णुतीर्थ

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्तिपात भाग २

शिवसूत्रप्रबोधिनी

: मूल लेखक :

श्री अभिनव गुप्त

: टीकाकार :

श्री स्वामी विष्णुतीर्थ

मूल्य : १० रुपये

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक :
योगश्री पीठ ट्रस्ट (प्रकाशन)
मुनीकीरेती, पोस्ट० शिवानन्दनगर-२४९ १९२
जिला—टिहरी गढ़वाल (उ०प्र०)

सर्वाधिकार प्रकाशक के सुरक्षित

तृतीय बार — २००० प्रतियाँ
संवत् २०४६ — सन् १९८९ ई०

मुद्रक :
देवेन्द्र विज्ञानी,
विज्ञान प्रेस, दूरभाष : ८०
ऋषिकेश-२४९ २०१ (देहरादून) उ०प्र०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

टीकाकार—

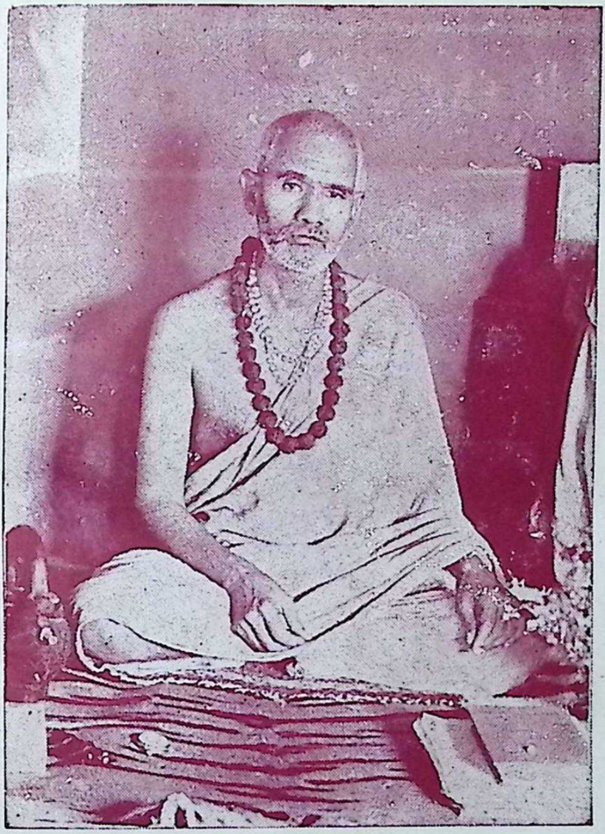

श्री १००८ स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूमिका

शिवसूत्र-संज्ञक यह छोटा-सा दर्शनशास्त्र काश्मीरी शैव दर्शन का संक्षिप्त परन्तु अति गहन एवं उपयोगी ग्रन्थ है। विशेषतः शक्तिपात दीक्षा एवं कुण्डलिनी शक्ति के साधनक्रम के महत्व को समझने के लिए यह अपना विशेष स्थान रखता है। लगभग सात सौ वर्ष पहले अभिनव गुप्त नाम के विद्वान् हुए हैं, यह उन्हीं का रचित कहा जाता है। अभिनव गुप्त का रचित इसी विषय का एक बड़ा ग्रन्थ 'तन्त्रालोक' भी मिलता है। इस ग्रन्थ-माला के १२ भाग हैं। एक अभिनव गुप्त का नाम शङ्कर-दिग्विजय में भी आता है जो आसाम के रहने वाले थे और जिनको श्री शङ्कराचार्य पूज्यपाद ने शास्त्रार्थ में परास्त किया था। 'शिवसूत्र' तथा 'तन्त्रालोक' के रचयिता अभिनव गुप्त श्री शङ्कर भगवद्पाद से बहुत पश्चात् हुए हैं।

इन के इस दर्शन को उन्मेषवाद कहा जा सकता है जिसे श्री भगवद्पाद के विवर्तवाद का स्पष्टीकरण कहा जाय तो अनुचित न होगा। यह दृश्य प्रपञ्च वेद में धाता के सङ्कल्प अथवा समवर्तन का परिणाम कहा गया है जैसा कि 'यथा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri

धाता पूर्वमकल्पयत्', 'कामस्तदग्रे समवर्तताधि', 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे', इत्यादि वचनों से स्पष्ट है। ब्रह्म का सृष्टि के रूप में विशेष रूप से या सम रूप से वर्तमान होना ही विवर्तन या समवर्तन है।

इस दर्शन में सृष्टिक्रम को पाँच कलाओं के क्रमानुसार उन्मेष संज्ञा दी गई है। उन्मेष का अर्थ नेत्र खोलना है, परन्तु पारिभाषिक अर्थ में ज्ञान का प्रस्फुरण समझना चाहिए। जैसे स्वप्न की सृष्टि स्वप्न-द्रष्टा के आत्मदेव का उन्मेष है, वैसे ही दृश्य जगत् धाता के सङ्कल्प का उन्मेष है। आत्मा के चित्स्वरूप को ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय की त्रिपुटी की अपेक्षा से 'ज्ञः' कहा जाता है। ज्ञः से त्रिपुटी का युगपद उदय-अस्त होता है। त्रिपुटी के उदय को ज्ञः का उन्मेष कहते हैं। ज्ञः सदा स्थिर रहता है, त्रिपुटी के योग से उस में स्पन्दन अथवा कम्प नहीं आता। यह त्रिपुटी जीव के बन्धन का कारण बनती है। ईश्वर को बन्धन नहीं होता क्योंकि जाग्रति में जीव का ज्ञेयोन्मेष ईश्वरीय प्रपञ्चरूपी ज्ञेयोन्मेष के निमित्त से नित्य सत्य भासने लगता है। 'तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः' (प्र०उ०, ५-६) इत्यादि में इन्हें तीन मात्रा कहा गया है जो मृत्युमती हैं।

दोनों में यह भी अन्तर है कि हमारा स्वप्न शक्ति-रहित है, इसलिए उसकी कोई सत्ता नहीं, परन्तु सर्वशक्तिमान् का उन्मेष सशक्त है क्योंकि उसका सङ्कल्प शक्तियुक्त है। इसके लिए ब्रह्मसूत्र देखिये जिसमें कहा है—'अर्थवती हि सा'। सर्व-शक्तिमान् की शक्ति पूर्ण है। वह पूर्ण सृष्टि करके पूर्ण ही बच रहती है—'पूर्णमदः पूर्णमिदं'। पूर्ण बची हुई शक्ति को अथर्ववेद में 'उच्छिष्ट ब्रह्म' और पुराणों में शेषनाग कहा है। शेषनाग को विश्व की कुण्डलिनी कहा जा सकता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सब प्राणियों के देह भी पूर्ण हैं—'यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे'। व्यष्टि रूप से सब देहों में देह की रचना कर के जो शक्ति बच रहती है, उसे तन्त्र शास्त्रकारों ने कुण्डलिनी की संज्ञा दी है। वह भी प्रत्येक मनुष्य में पूर्ण है।

शैव दार्शनिक ब्रह्म को परम शिव कहते हैं। उस के उन्मेष की प्रथम कला में शिव शक्तियुक्त होता है। इसलिए इस कला में शिव-शक्ति दोनों प्रथम शान्तातीता कला के दो तत्त्व कहे जाते हैं। शक्ति की शिव में अभिव्यक्ति की स्थिति को तीसरा सदाशिव कहा है जिसे 'अर्धनारी नटेश्वर' भी कहते हैं। इस स्थिति को द्विदलीय बीज के सदृश्य समझा जा सकता है। फिर शक्ति शिव से पृथक् हो जाती है। तब शिव भाव को ईश्वर और शक्ति को शुद्ध विद्या कहा गया है। इन तीन तत्त्वों को शान्ति कला के अङ्ग माना गया है।

शक्ति फिर क्रिया-शीला होती है, क्रिया में गति, गति से काल, परिणति से कला और उन के क्रम से नियति,—इन तीन तत्त्वों का उदय होता है। शिव को चिन्मय और शक्ति को आनन्दमयी समझना चाहिए। इसी अभिप्राय से 'सच्चिदेकं ब्रह्म' ज्ञान रूप शिव और चिदानन्द लहरी रूपा शक्ति है जिसे गीता में अध्यात्मभाव और भूतभाव कहा गया है—

अक्षरं ब्रह्म परमं, स्वभावोऽध्यात्म उच्यते।
भूत भावोद्भवकरो विसर्गः कर्म संज्ञितः॥

—गीता ८, ३

अध्यात्मभाव अहम् के रूप में और भूतभाव इदम् के रूप में व्यक्त होता है। परमशिव ज्ञानरूप चिन्मय ज्ञः है जिसमें उन्मेष होने पर अहम्-इदम् विमर्ष का उदय होता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
इदम् में काल, कला, नियति के योग से अहम् रूपी द्रष्टा के बहिर्ज्ञान में तीनों की दीवारें-सी खड़ी हो जाती हैं। यद्यपि शिव के विमर्ष ज्ञान में सर्वज्ञता रहती है, पर जीव-भाव में वह सीमित एकदेशीय हो जाता है, इसलिए यह तीनों माया के अङ्ग माने गये हैं, क्योंकि यह ज्ञान को माप में डाल देती है। तीनों तत्त्वों के विमर्ष को यहाँ विद्या कहा है जिसके राग में पड़ कर शिव का अंश रूपी जीव पुरुष माया-बद्ध दीखने लगता है।

काल, कला, नियति, विद्या और राग, जीव पर आवरण के सदृश्य होने के कारण, पाँच कञ्चुक (कैंचुली) कहलाते हैं। माया, ५ कञ्चुक और पुरुष सहित विद्या कला के सात तत्त्व होते हैं। शक्ति की अव्यक्त दशा से महत् तत्वादि सांख्य के २४ तत्त्व इस शास्त्र को यथावत् मान्य हैं। अन्तिम पृथिवी को निवृत्ति कला और २३ तत्त्वों को प्रतिष्ठा कला के अन्तर्गत कहा जाता है। ये २४ तत्त्व अशुद्ध तत्त्व और विद्या कला के ७ तत्त्व शुद्धाशुद्ध तत्त्व कहलाते हैं।

'जीवो ब्रह्मैव न परः'—जीव ब्रह्म ही है, अन्य नहीं। 'ममैवांशो जीवलोके जीव भूतः सनातनः'—जीव लोक में मेरा ही सनातन अंश जीव कहलाता है (गीता)। वह इन्द्रियों और मन से युक्त हो कर संसार में सुख-दुःखों का भोक्ता होता है। शिवसूत्रों में माया द्वारा जीव के बन्धन का कारण ज्ञेय रूप प्रपञ्च का ज्ञान कहा गया है—'ज्ञानं बंधः'। मानो आत्मा के ज्ञान को माया के पाँच कञ्चुक आवृत करके अहम्-मम रूपी पाश में बाँध देते हैं। इसीलिए यहाँ जीव को पशु और शिव को पशुपति कहा है। कुण्डलिनी शक्ति जागने पर तत्त्वों की शुद्धि करके जीव को पाश-मुक्त करती है। पाँचों कलाओं का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
नामकरण उनके अङ्गस्वरूप तत्त्वों की शुद्धि के अनुसार ही किया गया है अर्थात् भोगों से निवृत्ति द्वारा निवृत्ति कला की शुद्धि होती है, शक्ति की प्रतिष्ठा द्वारा अव्यक्त तत्व की शुद्धि होती है। विद्या कला की शुद्धि विद्या द्वारा, शान्ति कला की शान्ति द्वारा और शान्तातीता की शुद्धि शान्तातीता द्वारा होती है।

जैसा कि शिवपुराण की वायवीय संहिता के अध्याय २९ में कहा गया है—

प्रापिका व्यापिका शक्तिः पञ्चतत्व विशोधनात् ।
निवृत्त्या रुद्रपर्यन्ता स्थितिरण्डस्य शोध्यते ॥२१
प्रतिष्ठया तदूर्ध्वन्तु यावदव्यक्त गोचरम् ।
तदूर्ध्वं विद्यया मध्ये यावद्विद्येश्वरावधि ॥२२
शान्त्या तदूर्ध्वमध्वान्ते विशुद्धि शान्त्यतीतया ।
यमाहुः परमं व्योम परप्रकृति योगतः ॥२३

व्यापिका शक्ति ५ तत्त्वों का शोधन करने के कारण प्रापिका कही जाती है। व्यापिका और प्रापिका दोनों 'आप्=पाना' धातु के रूप हैं। जो व्यापक होते हुए भी मिलती नहीं, दृष्टिगोचर अथवा अनुभवगम्य नहीं होती, वही जब तत्त्वों का शोधन करने लगती है, तब अनुभव में आने लगती है अर्थात् व्यापिका से सुप्तावस्था और प्रापिका से जाग्रतावस्था समझना चाहिए। जाग कर कुण्डलिनी शक्ति किस क्रम से तत्त्वों का शोधन करती है, यह यहाँ बताया गया है। ३६ तत्त्वों को ५ कलाओं में उनके शुद्धि-क्रम के अनुसार रखा गया है और कलाओं का नामकरण भी उसी दृष्टि से किया गया है। शक्ति के जागने पर क्रियावती, कलावती, वर्णमयी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

और वेधमयी — चार नाम कहे गये हैं। विभिन्न क्रियाएँ स्वतः कराती है—इसलिए क्रियावती, पाँचों कलाओं का रूप धारण कर तत्त्वों की शुद्धि करती है—इसलिए कलावती, मातृका शक्ति के रूप में व्यक्त होने से वर्णमयी और षट्चक्र वेध करने से वेधमयी नाम दिये गये हैं।

शक्तिपात् द्वारा दीक्षित साधकों का अनुभव है कि शक्ति जागने पर विषय-भोगों से वृत्ति हटने लगती है अर्थात् निवृत्ति आ जाती है। फिर शक्ति प्रतिष्ठित हो कर अपना परिचय कराती है। मातृका शक्ति सरस्वती के रूप में व्यक्त हो कर विद्या प्रदान करती है और शान्ति एवं समाधिरूपा शान्त्यातीता तक ले जाती है। तन्त्रालोक में अभिनव गुप्त कहते हैं कि ब्रह्म तत्त्व कल्पनातीत है, अतः उसे प्राप्त करने का साधन भी कल्पनातीत होना चाहिए,—और वह है कुण्डलिनी की जागृति।

भावनोपनिषद् में क्रिया शक्ति को पीठ, ज्ञान शक्ति कुण्डलिनी को गृह और इच्छा शक्ति को महात्रिपुरसुन्दरी कहा गया है। विषयभोग पार्थिव हैं, अतः निवृत्ति कला के अन्तर्गत हैं तथा प्रथम २३ तत्त्व प्रतिष्ठा कला के अन्तर्गत् हैं। प्रतिष्ठा कला में शक्ति का ज्ञानरूप विकसित होता है, इसलिए उसे घर मानना चाहिए। विद्या को रागयुक्त होने से अशुद्ध और रागमुक्त होने से शुद्ध कहते हैं। शुद्ध विद्या का स्थान शान्ति कला है। शुद्ध विद्या को ही महात्रिपुरसुन्दरी कहा गया है।

निवृत्ति का अर्थ भोगों का त्याग नहीं, वरन् आसक्ति अथवा राग का न होना है, इसलिए दीक्षा लेने और कुछ अंश में शक्ति की जाग्रति होने पर यदि साधक निवृत्तिपरायण नहीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
होता तो शक्ति में अप्रतिष्ठा के कारण उसकी शक्ति शिथिल हो जायेगी। यह शिकायत बहुधा सुनने में आती है और विषयासक्ति बनी रहने से न विद्या में शुद्धि आती है और न शान्ति ही मिलती है। इसलिए प्रत्येक साधक को निवृत्ति-परायण होना कितना आवश्यक है, यह समझना कठिन नहीं है। ईश्वर-शरणागति को भी निवृत्ति का ही प्रारम्भिक पग समझना चाहिए जो आगे चल कर 'ईश्वर-प्रणिधान' का रूप धारण कर लेती है। निवृत्ति द्वारा रुद्रपर्यन्त स्थिति का शोधन कहा है। रुद्रों का कार्य रुलाना है। वास्तव में विषय-सुखों की इच्छा ही रुद्र है और इच्छा का न होना, तनु अर्थात् कम होना, निवृत्ति कहलाता है।

निवृत्ति का दार्शनिक रूप उपर्युक्त प्रश्नोपनिषद् की श्रुति में दिखाया गया है। वहाँ कहा गया है कि त्रिपुटी मृत्युमती है क्योंकि ज्ञान और ज्ञेय से बहिर्मुखी एवं मध्य स्थिति की क्रियाओं में ज्ञान और इसके विपरीत ज्ञेय ज्ञान से, और ज्ञान ज्ञाता से युक्त होकर अभ्यन्तर्मुखी क्रियाओं में एक दूसरे से आसक्त रहते हैं, यद्यपि उनके घनिष्ट युक्त होने पर भी ज्ञः कंपित नहीं होता। मध्य स्थिति से सङ्कल्पात्मिका और अभ्यन्तर से ध्यान समझना चाहिए। मृत्यु का स्थान देह है, ज्ञः आत्मा अमर है। इसलिए त्रिपुटी की अन्योन्यासक्ति के विच्छेद को निवृत्ति समझना चाहिए। यदि ज्ञान, ज्ञेय की आसक्ति टूट जाय तो ज्ञाता ज्ञान से तटस्थ रहने लगे अथवा आत्मस्थित होकर सङ्कल्पों का त्याग कर दे तो वह देहासक्ति रूपी बन्धन से मुक्त हो जाएगा। यही अमरत्व प्राप्ति है।

इस श्रुति के आगे उपनिषद् ॐकार की उपासना को

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीनों की अन्योन्यासक्ति के विच्छेदनार्थ साधन बताता है और अकार को ऋग्वेद रूपी ज्ञेय, उकार को साम वेद रूपी ज्ञान और मकार को यजुर् रूपी ज्ञाता कह कर इनको तीन मात्राओं की संज्ञा देता है। श्रुति इस प्रकार है—

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता
अन्योन्यसक्ता अनुविप्रयुक्ताः ।
क्रियासु बाह्याभ्यन्तर मध्यमासु
सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥

—प्रश्नोपनिषद् ५, ६

त्रिपुटी के रहते ज्ञः रूपी आत्मा का अनुसन्धान ही योग कहलाता है। गीता में श्री भगवान् कहते हैं—

शनैः शनैः उपरमेत् बुद्ध्या धृति गृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥

पूज्यपाद शङ्कराचार्य कहते हैं—'एष योगस्य परमो विधिः।' आत्मस्थित होकर कुछ भी न सोचना तभी संभव है जब मन-बुद्धि विषयों से सर्वथा उपरत हो जाएं। शक्ति जाग कर, साधक में एक अपूर्व आनन्द की लहर जगा कर, मन को अन्तर्मुखी करती है और विषय-भोगों से चित्त को हटाने लगती है। यह प्रायः सब साधकों का अनुभव है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राक्कथन

□

शिव-सूत्र काश्मीरी शैव-सम्प्रदाय का श्री अभिनव गुप्त-रचित सात-आठ सौ वर्ष पुराना ७७ सूत्रों का एक छोटा-सा शैव-दर्शन है। अभिनव गुप्त का ही रचित एक अन्य शक्तिपात् विषयक १२ खण्डों का बृहद् ग्रन्थ तंत्रालोक भी मिलता है। उसी विषय को लेखक ने केवल ७७ सूत्रों में ही भर दिया है।

इस दर्शन में तीन उन्मेष हैं जिनके नाम क्रमशः शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय और आणवोपाय दिये गये हैं। तीनों उन्मेषों के अन्त में 'उपाय' शब्द इस बात का द्योतक है कि ये किसी लक्ष्य की प्राप्ति अथवा सिद्धि के लिए एक विशेष साधनक्रम का प्रतिपादन करते हैं और तीनों उन्मेष साधक की तीन अवस्थाओं के अनुसार,—जिनको आणव, शाक्त एवं शाम्भव संज्ञा दी गई है,—पूरे साधनक्रम को तीन स्तरों में विभक्त करते हैं। इसलिए सर्वप्रथम तीनों स्तरों का भेद और साधन की मानसिक एवं आध्यात्मिक अवस्था, जिसके आधार पर उक्त स्तरीय भेद माने गए हैं, समझने आवश्यक हैं। उन्मेष के बारे में आगे यथा-स्थान विचार किया जायेगा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शाम्भव से ब्रह्म या शिवभाव, शाक्त से शक्तियुक्त भाव और आणव से अल्पज्ञ जीव भाव समझना चाहिए। ब्रह्म अथवा परम शिव सत्-चित्-आनन्द रूप सब को मान्य है और जीव उसका अंश रूप है अर्थात् शिव और जीव में सजातीय भिन्नता न होकर अंश-अंशी का सम्बन्ध है। शिव सर्वज्ञ है और जीव अल्पज्ञ। दोनों में अन्तर केवल ज्ञान की मात्रा का है।

आणवोपाय कहता है कि जीव अपने वास्तविक ज्ञान स्वरूप को भूलकर अपने चित्त को आत्मा समझने लगा है,—जैसे ओस के कणों पर चमकने वाला प्रकाश अपने को ओस का कण मानने लगे। आणवोपाय का साधन इस भ्रान्ति को हटा कर साधक को अपने वास्तविक शिवस्वरूप का ज्ञान कराना चाहता है। जीवावस्था में विभु शाम्भव ज्ञान चित्त से तादात्म्य करके चित्त के संस्कारों के तद्रूप सीमित रहता है और अहंतावश उतनी ही शक्ति और ज्ञान के आधार पर कर्तृत्व और भोक्तृत्व अभिमानवश अनेक कर्म-विपाकों के जाल में फँसा रहता है।

चित्तात्मक ज्ञान विभु का अंश मात्र होने से आणव कहलाता है। यहाँ एक बात विचारणीय है कि शास्त्रों का कहना है और महान् पुरुषों का अनुभव है कि जीव के साथ ईश्वर भी रहता है। प्रश्न यह है कि ईश्वर के ज्ञान पर, जीव के सदृश्य, चित्त के संसर्ग से अणुत्व क्यों नहीं आता, यद्यपि दोनों समान रूप से एक साथ रहते हैं? इसका उत्तर यह दिया जाता है कि जीव माया के अधीन अपने स्वरूप को भूल जाता है, ईश्वर माया के साक्षी रूप से तटस्थ रहता है। इसीलिए माया के पाश से बँधे जीव को पशु और शिव को पशुपति कहा गया है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अब स्वाभाविक प्रश्न होता है कि माया क्या वस्तु है और उसका स्वरूप क्या है ? वेदान्त पक्ष वाले कहते हैं कि 'मा' नहीं है, 'या' जो,—वह माया है। परन्तु यह अभावात्मिका व्याख्या पूर्णरूपेण शङ्का का समाधान नहीं कर सकती। शैव दार्शनिकों के अनुसार 'मा' मापने के अर्थ में है, जो विभु को माप में डाल देती है, वह अज्ञानात्मिका माया है। अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं, वरन् अपूर्ण ज्ञान के अर्थ में लेना चाहिए। देश, काल और नियति, जिनका अस्तित्व तात्विक न होने पर भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता, ज्ञान को अपने क्षेत्र में सीमाबद्ध कर देते हैं। इस अपूर्ण दृष्टि को माया अथवा अविद्या कहते हैं। इसलिए जीव को माया मल, आणव मल तथा कर्तृत्व-भोक्तृत्व मल से आवृत कहा जाता है।

कुण्डलिनी शक्ति की जागृति होने पर शाक्तोपाय आरम्भ होता है। शक्तिपात दीक्षा प्राप्त साधकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि कुण्डलिनी के जागने पर शक्ति स्वयं क्रियाएँ करने लगती है। इसीलिए इसे क्रिया-योग भी कहते हैं। आणवोपाय का साधक जो क्रियाएँ सप्रयास करता है, शक्ति जागने पर वे स्वतः होने लगती हैं। साधक अनुभव करने लगता है कि उसके अन्तर में वह शक्ति जागृत हुई है जो सब साधनों को पूर्णरूपेण जानती है और उसकी क्रियाओं में किसी त्रुटि का भय नहीं होता। प्रायः देखा जाता है कि हठ-योग के साधकों को बहुधा शारीरिक और मानसिक व्याधियों का शिकार हो जाना पड़ता है जिनका उपचार कभी-कभी असाध्य होता है और जो उनके कर्तृत्वाभिमान की असावधानी के कारण होती हैं। परन्तु शाक्तोपाय के साधकों में ऐसी कोई बात सुनने में नहीं आती। वह देवात्मिका परा शक्ति साधक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

को उसकी भूमिका एवं बलाबल के अनुसार बिना प्रयास साधन कराती है, क्योंकि शक्ति ज्ञानवती है, 'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च' (श्वेताश्वतरोपनिषद्)। इसलिए शक्ति जागने पर जीव का कर्तृत्वाभिमान स्वतः शिथिल होने लगता है, शरणागति का भाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगता है और अन्ततोगत्वा कर्तृत्वाभिमान के क्षीण होने पर वह आणव मल से ऊपर उठ जाता है। इस प्रकार शक्ति उसे स्वतः शाम्भवोपाय के स्तर पर ले जाती है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

'जीवो ब्रह्मैव नापरः', परन्तु 'आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः' (कठ)—आत्मा, इन्द्रियों और मन से युक्त होने से भोक्ता कहलाता है। उसका चित्त से तादात्म्य-भाव नीचे इन्द्रियों और भौतिक देह तक उतर आता है। वह कर्मेन्द्रियों के योग से अपने को कर्ता कहता है, ज्ञानेन्द्रियों के योग से भोक्ता और देहासक्ति के कारण अपने को मरणशील मानता है, परन्तु उसका सत् स्वरूप अमरत्व यही कहता है कि मैं कभी न मरूँगा,—यह शरीर सदा बना रहे। आनन्द का भाव विषयों के सुखों का रूप धारण कर लेता है अर्थात् उसके सत्स्वरूप, चित्स्वरूप और आनन्दस्वरूप में अणुत्व आ जाता है।

शक्ति जागने पर साधकों को सर्वप्रथम एक अपूर्व आनन्दावेश और मस्ती का अनुभव होता है। घण्टों आसन पर बैठे रहने पर भी उठने को चित्त नहीं होता, कियाएँ होती हैं तो वे भी अपूर्व आनन्द का स्रोत बहाने वाली होती हैं। हँसना, चिल्लाना, रोना,—सब उसे आनन्द-विभोर करते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
इसीलिए श्रीमत् भगवत् पूज्यपाद शङ्कराचार्य ने स्वलिखित 'सौन्दर्य-लहरी' के श्लोक ८ में कुण्डलिनी शक्ति को चिदानन्द लहरी और श्लोक २१ में परमानन्द-लहरी कहा है।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यह आनन्द आत्मा का अपना ही स्वरूप है। शक्ति के जागने पर चित्त और आत्मा का तादात्म्य, जो अणुत्व का कारण है, शिथिल होने लगता है और आत्मानन्द का आंशिक स्फुरण आरम्भ होता है। साथ ही विषयों से विरति होने लगती है और भोगेच्छा तनु पड़ने लगती है। कर्तृत्वाभिमान के क्षीण होने से मन सङ्कल्प-विकल्पों के स्थान पर स्थिरता का अभ्यस्त होने लगता है और मौन होकर आत्मानन्द के रसास्वादन में डूबा रहना चाहता है। कहा है—'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन।'

चिदानन्द में चित् को ज्ञान-स्वरूप शिव-भाव और आनन्द को शक्तिरूपा भगवती का भाव समझना चाहिए। दोनों के एकत्व सम्बन्ध का श्रीशङ्कर भगवद्पाद सौन्दर्यलहरी के ३४वें श्लोक में इन शब्दों में निरूपण करते हैं—

"शरीरं त्वं शम्भोः शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं,
तवात्मानं मन्ये भगवति नवात्मानमनघम् ।
अतः शेषः शेषीत्ययमुभयसाधारणतया,
स्थितः सम्बन्धो वां समरस परानन्दपरयोः ॥

—हे भगवती ! तू शम्भु का शरीर है जिसके वक्षस्थल पर स्तन रूपी दोनों चन्द्र और सूर्य हैं। मैं निष्पाप भगात्मा (संसार की आत्मा) शङ्कर को तेरी आत्मा मानता हूँ,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसलिए आप दोनों महानन्द और परमात्मा का साधारणतया शेष (विशेषण) और शेषी (विशेष्य) का सम्बन्ध स्थित है।"

इस प्रकार शाक्तोपाय के आनन्द से ऊपर उठ कर चैतन्य ज्ञानयुक्त शाम्भवोपाय का उदय होता है। शास्त्रकार ने प्रथम उन्मेष में शाम्भव, दूसरे में शाक्त और तीसरे में आणवोपाय को स्थान दिया है। शाम्भवोपाय भी उपाय अर्थात् साधन का अङ्ग होने से शाम्भव अथवा शिव या ब्रह्म भाव को मोक्ष नहीं कहा जा सकता। 'क्यों ?'—इसका उत्तर और अन्तिम अवशिष्ट आवरण को हटाने का उपाय ही इस ग्रन्थ के प्रथम उन्मेष का विषय है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिवसूत्रप्रबोधिनी

❀

मंगलाचरण

नत्वा कुण्डलिनीं देवीं शुद्धविद्या स्वरूपिणीम् ।
लिख्यते साधकेभ्यो अथ शिवसूत्रप्रबोधिनी ॥

❀

प्रथमोन्मेष (शाम्भवोपाय)

शैव-दार्शनिकों की विचारधारा को समझने के लिए 'उन्मेष' शब्द का अर्थ समझ लेना अत्यावश्यक है। इसी अर्थ में 'स्पन्द' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। उन्मेष का सामान्य अर्थ 'नेत्र खोलना' है। आत्मतत्त्व में भौतिक नेत्र नहीं हैं, परन्तु वह बिना नेत्रों के ही देखता है, बिना कानों के ही सुनता है—'सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् ।' आत्मा के स्वरूप को 'ज्ञः' मात्र कहा गया है अर्थात् ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय की त्रिपुटी की पृष्ठभूमि जिस का आधार 'ज्ञः' है। जब 'ज्ञः' में अध्यात्मभाव 'अहम्' का उदय होता है, साथ ही युगपद

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

'इदं' का भाव भी आ उपस्थित होता है, तब इन दोनों उदयों को 'अहम् विमर्ष' और 'इदं विमर्ष' कहा जाता है।

विमर्ष का अर्थ समझना या जानना है। 'ज्ञः' ज्ञानस्वरूप है, इसलिए जब उसमें इन दोनों का उदय होता है, तब ज्ञाता और ज्ञेय का ज्ञान होना है। इस त्रिपुटी के उदय को ही उन्मेष समझना चाहिए। स्वप्न इस का अच्छा उदाहरण है। स्वप्नों का उदय-अस्त सुषुप्ति से हुआ करता है। सुषुप्ति में इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहङ्कार सब का कारण-शरीर में लय हो जाता है और आत्मा अपने 'ज्ञः' स्वरूप में स्थित हो जाता है। इसीलिए सुषुप्ति अवस्था को संप्रसाद कहा गया है। स्वप्न में जगत् के दृश्य रूपी ज्ञेय, इन्द्रियों और अन्तःकरण के उदय के साथ उनका अधिष्ठान देह भी दीखने लगता है और 'अहम्-इदं' के नाते ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय तीनों का निर्माण प्रतीत होता है। यह सब 'ज्ञः' के उन्मेष का ही परिणाम है। स्वप्न के अस्त होने पर स्वप्न का सारा जगत् 'ज्ञः' में विलीन हो जाता है। यह आत्मा का स्वभाव है। धाता के सङ्कल्परूपी उन्मेष से उद्भूत इस सृष्टि का भी यही क्रम है जिस के अन्तर्गत हमारा जाग्रत का शरीर, इन्द्रियाँ, अन्तःकरण एवं बाह्य दृश्य हैं—'यथा धाता पूर्वमकल्पयत्।' अब पहले सूत्र का भाव भली प्रकार समझा जा सकेगा—

चैतन्यमात्मा ॥१

शाम्भवोपाय में साधक अपनी चेतना को आत्मा समझता है। चेतन का भाव चैतन्य है। आत्मा सत्-चित् रूप है। उस की शक्ति को सत्-शक्ति और चित्-शक्ति कहते हैं। पिण्ड

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

और ब्रह्माण्ड सारा जगत् सत्-शक्ति का कार्य है। महत्तत्त्व, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर भी सत् शक्ति के ही परिणाम हैं, किन्तु इन में जो चेतना या चैतन्य-भाव है, वह इन पर पड़ा चिति शक्ति का प्रत्याभास (Reflection) मात्र है। इसीलिए चैतन्य को आत्मा कहना वास्तविकता नहीं है, क्योंकि वह तो चित्त पर आत्मा का चेतन प्रकाश मात्र है। आत्मा तो स्वयंप्रकाश चिन्मात्र है।

शाम्भवोपाय का साधक चित्त और चैतन्य दोनों का अन्तर इस प्रकार अनुभव करता है जैसे कि प्रकाश और प्रकाश्य वस्तु में अन्तर है। आत्मा प्रकाशक है, चैतन्य उसका प्रकाश और चित्त प्रकाश्य है। शाम्भवोपाय के साधक का लक्ष्य चित्त से हट कर उस पर प्रतिभासित चेतन प्रकाश पर हो जाता है अर्थात् उसे इन की भिन्नता का ज्ञान होने लगता है। आत्मा को 'ज्ञः' और उसके चैतन्यभाव को उस का उन्मेष समझना चाहिए।

ज्ञानं बन्धः ॥२

यहाँ ज्ञान का अर्थ ब्रह्म या आत्मज्ञान नहीं, वरन् 'अह-मिदम्' विमर्षोन्मेष समझना चाहिए। चित् स्वरूप आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है, इसलिए उस के चैतन्य प्रकाश में भी ज्ञान अर्थात् जानने की शक्ति विद्यमान् है। उक्त चैतन्य प्रकाश चित्त से तादात्म्य कर के इन्द्रियादि द्वारा बाह्य विषयों के ज्ञान का ज्ञाता होता है। अतः चित्त की निर्विषयी अवस्था शुद्ध ज्ञान की अवस्था है और बाह्य ज्ञानयुक्त अवस्था सविषयी ज्ञान है जो इदं विमर्षोन्मेष मात्र है। विद्या कला में माया के पाँच कञ्चुक कहे गए हैं—काल, कला, नियति, विद्या

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

और राग। यहाँ विद्या सविषयी ज्ञान की वाचक है जो काल, कला, नियति का ज्ञान कराती है। यही विद्या जब रागयुक्त होती है तो बन्धन का कारण होती है। इसीलिए 'ज्ञानं बन्धः' कहा गया है।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है। चित्त के संयोग से चित्त पर आत्मा का चैतन्यभाव व्यक्त होता है जो बाह्य ज्ञेय की ओर प्रवृत्त होने के कारण ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की त्रिपुटी के बन्धन में आ जाता है अर्थात् ज्ञातृभाव में चैतन्य आत्मा चित्त से तादात्म्य कर के अपने को ज्ञाता समझता है। इस तरह अणु चित्त से तादात्म्य करने के कारण उस में अणुत्व का ज्ञान तथा चित्त के विषयों के अल्पज्ञान के कारण अल्पज्ञत्व आ जाता है। यही दोनों बन्धनरूप हैं।

आगे सूत्र १४ से १७ तक के अनुसार चित्त दृश्य ज्ञेय से हटता हुआ अन्तर्मुखी होता है और शुद्ध तत्व अर्थात् ईश्वर के अनुसन्धान द्वारा शुद्ध विद्या में स्थित होता हुआ ईश्वर और शुद्ध विद्या की विविक्त पृथकता अनुभव करके स्वस्वरूप में स्थित होता है—

योनिवर्गः कला शरीरं ।।३

पूर्व सूत्र के साथ इस सूत्र को इस तरह पढ़ना चाहिए— 'बन्धः योनिवर्गः ज्ञानं कला शरीरं।'

उपरोक्त बन्धन के कारण माया का वर्गीकरण पाँच कञ्चुकों के अनुसार किया जाता है। उसे तीन श्रेणियों में माना गया है—मायाय मल, आणव मल और कर्तृत्व-भोक्तृत्व

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मल। इन तीनों मलों के कारण ही बाह्य ज्ञान जीव के लिए बन्धन का कारण होता है। कला, चित्त और शरीर क्रमशः तीनों प्रकार के मलों के कारण होते हैं। शरीर के द्वारा कर्त्ता और भोक्तापन का उदय होता है, चित्त के द्वारा समष्टिभाव से हट कर व्यष्टिभाव का अणुत्व उदय होता है तथा इन सब का कारण राग-रूपी माया है। पातञ्जल योग दर्शन में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश पाँचों क्लेशयुक्त चित्तवृत्तियों को क्लिष्टा और पंच क्लेश-रहित वृत्तियों को अक्लिष्टा कहा है (यो० द० १।५)। पाँच क्लेशों में अविद्या शेष चार क्लेशों की भूमि है। अविद्या माया की ही पर्यायवाची है तथा अस्मिता चैतन्यभाव है। अभिनिवेश और विरोधी द्वेष दोनों का समावेश राग के अन्तर्गत ही है।

शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय तथा आणवोपाय में समान रूप से उपरोक्त बन्धन है। शाम्भवोपाय में कर्तृत्व पर्याप्त क्षीण हो जाने के कारण आणव ज्ञान भी सूक्ष्म हो जाता है। इसलिए—

ज्ञानाधिष्ठानं मातृका ॥४

उस के ज्ञान का अधिष्ठान मातृका शक्ति है। कुण्डलिनी के वर्णमयी रूप का नाम ही मातृका शक्ति है जो सरस्वती-रूपा वाक् शक्ति है। वर्णमाला को मातृका कहते हैं।

शक्ति के तीन रूप होते हैं—इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति। भावनोपनिषद् में क्रिया शक्ति को पीठ अर्थात् आधार, ज्ञान शक्ति को कुण्डलिनी और इच्छा शक्ति को महात्रिपुरसुन्दरी कहा गया है। इस सूत्र में मातृका शक्ति

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

से ज्ञान शक्ति कुण्डलिनी अभिप्रेत है। क्रिया शक्ति शाक्तोपाय का विषय है जो दूसरे उन्मेष (अध्याय) में आयेगा। श्वेताश्वतरोपनिषद् के प्रथम अध्याय के तीसरे मन्त्र में इसी को देवात्म शक्ति कहा गया है। छठे अध्याय के आठवें मन्त्र में यह भी कहा गया है—

पराऽस्य शक्तिः विविधैव श्रूयते,
स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च।

अर्थात् यह शक्ति परमात्मा की शक्ति है, साधक की नहीं है।

इस सूत्र में यह बताया गया है कि शांभवोपाय के साधन में ज्ञानशक्तिरूपा वर्णमयी कुण्डलिनी का विकास होता है—

उद्यमो भैरवः ॥५

उसका साधक भैरव होता है। 'शिवसूत्र विमर्षिणी' में समष्टि चेतना रूपी महत्तत्व को भैरव कहा है। पूज्यपाद शङ्कराचार्य ने उस में विभु प्राण एवं विभु बुद्धि दोनों का समावेश किया है जिसे उन्होंने हैरण्यगर्भ प्राण एवं हैरण्यगर्भ बुद्धि कहा है। शांभवोपाय का साधक व्यष्टि से ऊपर उठ कर समष्टि प्राण में प्रवेश करने लगता है।

उक्त शक्ति के जाग्रत होने पर साधक में शक्ति के विभिन्न भाव प्रकट होते हैं जिनको नवधा भाव (रस) कहा गया है—

'रौद्रोऽद्भुतश्च शृङ्गारो हास्यं वीरो दया तथा।
भयानकश्च बीभत्सः शान्तः सप्रेम भक्तिकः॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

रौद्र—भयकारी भाव, अद्भुत—विस्मयजनक भाव, शृङ्गार—रतिजनक भाव, हास्य—हंसी-खुशी का भाव, वीर—उत्साहपूर्ण भाव, वीभत्स—घृणा-व्यञ्जक भाव, सप्रेम—भक्तिभाव और शान्त—नम्र भाव। यही नौ रस हैं। उक्त शक्ति के जाग्रत होने पर साधक में इन भावों का आवेश समय-समय पर आता है। शान्त भाव को छोड़ कर शेष सब भाव भैरव के रूप कहे गए हैं। शान्त भाव का उदय शान्ति कला में तीनों मलों के शुद्ध होने के पश्चात् होता है, इसलिए वह भैरव में सम्मिलित नहीं होता। साधक में इन भावों का उदय होना उसके साधनक्रम का अङ्ग है।

यहाँ यह याद रखना आवश्यक है कि आणवोपाय ही यत्नसाध्य है। शेष दोनों उपाय यत्नसाध्य नहीं, शक्तिसाध्य हैं। शांभवोपाय में शक्ति विभु (हैरण्यगर्भ) प्राण में कार्य करती है, इसलिए कठोपनिषद् में उसे अदिति कहा है—'या प्राणेन संभवति अदितिर्देवतामयी।'

शक्तिचक्रसंधाने विश्वसंहारः ॥६

सकल विश्व की कृति शक्ति का एक महान् चक्र है, परन्तु साधक को अपना लक्ष्य शरीरस्थ सुषुम्नागत षट्चक्रों पर ही रखना चाहिए क्योंकि पिण्डस्थ चक्रों का सम्बन्ध ब्रह्माण्ड से है। शक्ति-चक्र का अर्थ षट्चक्र लेना चाहिए। शरीर में जितनी क्रियाएँ होती हैं, उनका आधार ये चक्र ही हैं जो सुषुम्ना में स्थित हैं। पाँचवें सूत्र में जिन भैरव-भावों का उल्लेख किया है, उनका सम्बन्ध भी विभिन्न चक्रों से ही है। शक्ति-जागरण के पश्चात् वे भाव दिव्य रूप धारण कर लेते

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं जिनका स्रोत विभु चेतना से उदित हो कर निम्न स्तर तक प्रवाहित होता हुआ अनुभवगम्य होने लगता है। इन भावों से लक्ष्य हटा कर उनके सम्बन्धित चक्रों का अनुसन्धान करने से, उन भावों का विलीनीकरण होने पर, समाधि होती है। समाधि से ही विश्व का संहार अभिप्रेत है। भाव में रस लेना साधन में विघ्न है, अतः उसके वशीभूत न हो कर उसको सुषुम्ना में विलीन कर देना चाहिए। प्रत्येक चक्र पर संयम करने से तत्सम्बन्धी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, परन्तु वे समाधि के लिए विघ्न हैं।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभेदे तुर्याभोग संभवः ॥७

समाधि से उतरने पर व्युत्थान दशा में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में तुर्या के आनन्द के सम्भव (साथ रहने) का अनुभव विद्यमान् रहता है। ऐसे साधक का—

ज्ञानं जाग्रत ॥८

अनुभूत तुर्या भोग संभवयुक्त ज्ञान साधक की जाग्रत अवस्था है क्योंकि तुर्यावस्था में आत्मस्थिति होती है। ('तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'—योग दर्शन)।

स्वप्नो विकल्पः ॥९

वस्तुरहित शाब्दिक ज्ञान को विकल्प कहते हैं। मन की संकल्प-विकल्पात्मक अवस्था को स्वप्नावस्था समझना चाहिए।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अविवेको माया सौषुप्तम् ॥१०

माया के पाँच कञ्चुकों से आवृत विवेकरहित ज्ञान ही सुषुप्ति है।

तृतयभोक्ता वीरेशः ॥११

इस प्रकार तीनों अवस्थाओं में तुर्या के भोक्ता को वीरेश कहते हैं अर्थात् वह शिवरूप है। तीनों अवस्थाओं का भोक्ता होते हुए भी उनसे अलिप्त रहने के कारण ही उसे वीरेश कहा गया है।

विस्मयो योग भूमिका ॥१२

विस्मय का अर्थ अहङ्कार और आश्चर्य दोनों होते हैं। वीरेश अर्थात् ऐसा साधक जो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में अलिप्त रहता हुआ योगभूमिका में पदार्पण करता है, उसे (आश्चर्यजनक दिव्य अनुभव होने के कारण) अहङ्कार और विस्मय दोनों हो सकते हैं। उसे इन दोनों से ही बचना चाहिए। इस सम्बन्ध में पातंजल योग दर्शन के विभूति-पाद के ५१वें सूत्र पर व्यासभाष्य देखें।

इच्छा शक्तिः उमा कुमारी ॥१३

उक्त योग-भूमिका में स्थित योगी की इच्छा शक्ति को उमा कुमारी माना गया है। उमा और कुमारी दोनों ही भगवती के नाम हैं। कुमार धातु का अर्थ बच्चों की तरह स्वाभाविक रूप से क्रीड़ा करना है अर्थात् कुमार और कुमारी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

बच्चे की उस अवस्था को कहते हैं जिसमें वह स्वाभाविक खेल-कूद में मस्त रहता है। जीवनमुक्ति की अवस्था भी 'बालोन्मत्त पिशाचवत्' कही गयी है अर्थात् ऐसे योगी की इच्छा शक्ति सांसारिक भोगों की इच्छा न करती हुई स्वाभाविक क्रीड़ा करती है। उसकी अवस्था ऐसी हो जाती है—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्यैव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥

—गीता ३, १७

वह आत्मज्ञाननिष्ठ योगी केवल आत्मा में ही रति वाला है, उसका प्रेम विषयों से न हो कर आत्मा से ही होता है। सामान्य मनुष्यों की भाँति वह बाह्य विषयों के लाभ से ही सन्तोष नहीं मान बैठता, अपितु आत्मस्थिति में ही सन्तुष्ट होता है। बाह्य विषयों में रमण तो स्वाभाविक है, उस क्रिया में वह रत हो या न हो, इससे उसे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। ऐसा आत्मा में क्रिया करने वाला और आत्मा में ही वास्तविक रमण करता हुआ सन्तुष्ट रहने वाला क्रियावान् पुरुष ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठतम है –

आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ।

—मुण्डकोपनिषद् ३, १, ४

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥

—गीता ५, २४

जिस पुरुष को अन्तरात्मा में ही सुख है, वह अन्तःसुख वाला है तथा अन्तरात्मा में ही जिस की क्रीडा होती है,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तरात्मा ही जिसकी ज्योति (प्रकाश) है, वह अन्तर्ज्योति है। ऐसा योगी जीवनकाल में ही ब्रह्मरूप हो जाता है, मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। भावनोपनिषद् में इच्छा शक्ति को महात्रिपुरसुन्दरी अर्थात् जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में आत्मक्रीड़ा, आत्मरमण करने वाली सुन्दरी शक्ति कहा है।

दृश्यं शरीरं ॥१४

ऐसा योगी शरीर को अपने से भिन्न मानने लगता है अर्थात् उसको देहाध्यास नहीं रहता। सारा शरीर (सकल ब्रह्माण्ड) उसे अपने शरीर का अङ्गवत् प्रतीत होने लगता है। इस सकल दृश्य को उसका शरीर कहा गया है।

हृदये चित्त संघट्टात् दृश्यस्वापदर्शनम् ॥१५

अर्थात् हृदय में चित्त के संघटित होने पर उसे सारा दृश्य स्वप्नवत् प्रतीत होने लगता है। यहाँ चित्त का अर्थ मन लेना चाहिए। तैत्तिरीयोपनिषद् में भी चित्त और मन को पर्यायवाची माना है—

> स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः।
> तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः अमृतो हिरण्मयः ॥
> —१, ६, १

वह जो यह अन्तर्हृदय में आकाश है, उसमें यह पुरुष मनोमय है, वह अमृत और हिरण्मय है। यहाँ मनोमय पुरुष को चित्ताभिमानी पुरुष समझना चाहिए, परन्तु वीरेश होने के कारण वह अमृत हिरण्मय है। जब उसका चित्त हृदया-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

काश में एकाग्र हो जाता है, तब हृदय पर संयम द्वारा जगत् उसको स्वप्नवत् दीखने लगता है। जैसे स्वप्न का दृश्य आत्मोन्मेष मात्र ही होता है, परन्तु उसमें ज्ञाता पूर्व संस्कारों-वश काम-क्रोधोद्भव भावों एवं भय से युक्त होकर स्वतः ही सुखी-दुखी होता है और भयातुर हो कर दूसरों से रक्षा चाहता है, यद्यपि वहाँ दूसरा कोई होता ही नहीं। इसी प्रकार जाग्रता-वस्था को भी समझना चाहिए। बाह्य प्रपञ्च का निमित्त लेकर अपने ही काम-क्रोधादि भावों के उद्भव से पशुवत् बँधकर दूसरों को अथवा दैव को दोष देता है।

शुद्धतत्त्वानुसन्धानाद्वा अपशुशक्तिः ॥१६

शुद्ध तत्त्वों के अनुसन्धान से साधक का पशुभाव नष्ट हो कर उसमें दिव्यभाव का उदय होता है। शान्ति कला के सदा शिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या शुद्ध तत्त्व कहे जाते हैं एवं शान्त्यातीता कला के शिव और शक्ति दोनों ही शुद्ध तत्त्व हैं। शान्ति कला विद्या कला से ऊपर की कला है अर्थात् शान्ति कला में काल, कला, नियति का ज्ञान न रह कर केवल अखण्ड शान्तिमय भूमिका का अनुभव होता है। यह सङ्कल्प-विकल्प-रहित अवस्था है। इस अवस्था में जीवत्व के तीनों मलों का अभाव हो जाता है। 'वा' शब्द विकल्प वाचक है अर्थात् हृदयाकाश में चित्त लगाना और शुद्ध तत्त्वों का अनुसन्धान करना,—दोनों का फल एक समान है।

वितर्क आत्मज्ञानम् ॥१७

वितर्क का अर्थ समाधि समझना चाहिए। योगदर्शन के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

समाधिपाद सूत्र ४१, ४२, ४३ में वितर्क समाधि का वर्णन है। संकल्प-विकल्परहित चित्त की एकाग्रावस्था में अपने चैतन्य-स्वरूप आत्मा पर लक्ष्य रखने से आत्मा का ज्ञान होता है। योग दर्शन में वितर्क, विचार, सानन्द और सास्मिता नाम की सबीज समाधियों का वर्णन है। वितर्क समाधि या समापत्ति प्रथम सीढ़ी है। यहाँ पर केवल वितर्क कहने और उसका फल आत्मज्ञान बताने से योगदर्शन की निर्बीज समाधि पर्यन्त पूरा साधन-सोपान आ जाता है। चित्त पर दृश्य के उन्मेष का ज्ञेयाकार उदय होने से रूप, नाम, आनन्द और अहंता—चतुर्धा ज्ञान होता है।

स्थूल जगत् में शुद्ध तत्त्वानुसन्धान द्वारा भगवद्भावना रखने से काम-क्रोधादि पाशविक भावों के नष्ट होने की बात इससे पहले सूत्र में कही है, इसलिए ऐसे योगी को आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

—गीता १८, ५३

ऐसे योगी के लिए—

लोकानन्द समाधिसुखम् ॥१८

व्युत्थान दशा में दृश्य का सुख समाधि के सुख के सदृश्य होता जाता है। लोकानन्द शब्द से दृश्य जगत् का आनन्द स्पष्ट है। उसमें द्रष्टा, दृश्य और दर्शन की त्रिपुटी होनी ही चाहिए, इसलिए यह व्युत्थान दशा का ही वर्णन है। इस दशा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

में समाधि-सुख का अभिप्राय योगदर्शन कथित अध्यात्म-प्रसाद समझना चाहिए। यहाँ एक बात और समझने की है कि ११वें सूत्र में जिस वीरेश अवस्था का वर्णन किया गया है, वह आत्मज्ञान के पूर्व की दशा है, किन्तु इस सूत्र में आत्मज्ञान सहित अवस्था का वर्णन है।

शक्तिसंधाने शरीरोत्पत्तिः ॥१९

यहाँ पर शक्ति का अर्थ इच्छा शक्ति, जिसे उमा कुमारी (बाला) कहा गया है, लेना चाहिए। वह योगी अपनी इच्छा से अनेक शरीर धारण कर सकता है।

निर्माण चित्तानि अस्मिता मात्रात्। —योगदर्शन ४, ४

भूतसंधान भूतपृथकत्व भूतसङ्घट्टाः ॥२०

ऐसे योगी में, भूतों पर जय प्राप्त होने से, किसी भी तत्त्व पर सन्धान मात्र से पञ्चीकरण का पृथकत्व और सङ्घटन कर सकने की क्षमता होती है। सङ्घटन से किसी शरीर का निर्माण और पृथकत्व से उसका विलय समझना चाहिए अर्थात् वह योगी स्वदेह और बाह्य दृश्य जगत् में परिवर्तन कर सकता है। किन्तु वह किसी नये ब्रह्माण्ड की रचना नहीं कर सकता।

शुद्धविद्योदयाच्चक्रे सत्वसिद्धिः ॥२१

इस सूत्र का पूर्व सूत्र के साथ सम्बन्ध है क्योंकि शुद्ध विद्या के उदय हो जाने से उस योगी को ब्रह्माण्डरूपी ब्रह्मचक्र के ऐश्वर्य की सिद्धि आ जाती है। वह योगी जगत्-व्यापार को छोड़ कर (ब्रह्मसूत्र-४-४-१७) अन्यथा सर्वशक्तिमान हो जाता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। ब्रह्मसूत्रों के उक्त सूत्र पर श्री शंकराचार्य अपने भाष्य में लिखते हैं कि जगत् की उत्पत्ति आदि व्यापार को छोड़ कर अन्य अणिमादि सभी ऐश्वर्य मुक्त पुरुषों में होने योग्य हैं, किन्तु जगत्-व्यापार तो नित्यसिद्ध ईश्वर का ही है।

महाह्रदानुसंधानात् मंत्रवीर्यानुभवः ॥२२

महाह्रद के अनुसन्धान से मन्त्र की शक्ति का अनुभव होता है। उपरोक्त सूत्र १९, २०, २१ में योगी की सर्वशक्ति-मत्ता का वर्णन किया गया है। योगदर्शन सूत्र ३, ४८ में बताया गया है कि बुद्धि या चित्त से आत्मा की अन्यता का ज्ञान होने पर योगी सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो जाता है। ह्रद का अर्थ एक तालाब या झील जैसा बड़ा जलाशय है। महाह्रद से सीमारहित समुद्र समझा जा सकता है। यदि चित्त को कूप और जीव को कूपमण्डूक कहा जाय तो उसकी अपेक्षा से समष्टि बुद्धि अर्थात् महत्तत्त्व को (जिसमें देश, कालादि सीमाओं का अभाव है) महाह्रद की और उस योगी को सर्वज्ञ (समुद्र के ज्ञाता) की संज्ञा दी जा सकती है। योगी जब व्यष्टि चित्त से ऊपर उठ कर समष्टि चित्त में प्रवेश करेगा तो उसमें सर्वज्ञता आ जायेगी। 'मननात् इति मन्त्रः',— इसलिए मन्त्रों की सार्वभौमिकता महत् बुद्धि में समाविष्ट है। मन्त्र की शक्ति वास्तव में चित्त की ही शक्ति है जिसका उद्गमस्थान महत् है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वितीयोन्मेष (शाक्तोपाय)

शाक्तोपाय शांभवोपाय की पूर्व भूमिका है। इस में कुण्डलिनी शक्ति की जागृति क्रियावती के रूप में होती है। भावनोपनिषद् में क्रिया शक्ति को पीठ अर्थात् आधार और ज्ञान शक्ति को कुण्डलिनी कहा है। यही ज्ञानवती शांभवोपाय में इच्छा शक्ति के रूप में विकसित हो जाती है। इस उन्मेष के अन्तर्गत् आत्मा की व्याख्या नहीं की गयी, अतः शांभवोपाय के 'चैतन्यमात्मा' को ही यहाँ भी समझना चाहिए। शक्ति की जागृति भी उन्मेष है, परन्तु साधक की इच्छा के अधीन न होने से उसे देवात्मिक कहा जाता है।

चित्तं मन्त्र ॥१

चैतन्य चित्त पर प्रकाशित आत्मा का प्रकाश है। यहाँ उसे मन्त्र की उपाधि दी गयी है। चित्त को मन्त्र क्यों कहा गया है? यह विचारणीय है। मन्त्र किसी विद्या-सिद्धि का साधन होता है। मन्त्र के जपादि द्वारा तत्सम्बन्धी विद्या की जागृति चित्त में ही होती है, इसलिए विद्या का वास्तविक स्थान चित्त है। जपादि तो चित्त की क्रिया मात्र हैं, अतः मन्त्र का स्थान गौण है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह पहले कहा जा चुका है कि गुरु मन्त्र द्वारा दीक्षा देते हैं। यहाँ पर जो चित्त को मन्त्र कहा गया है, उसका अभिप्राय यह है कि वेध दीक्षा में स्पर्शादि द्वारा ही शक्ति का जागरण हो जाता है, मन्त्र की अपेक्षा नहीं होती क्योंकि चित्त में शक्ति का प्रादुभाव होने पर मन्त्रचैतन्यवत् लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। चेतन होने के कारण ही शक्ति चिति-शक्ति कहलाती है जो चिन्मात्र ब्रह्म की शक्ति है। चित्त को चिति-शक्ति की ग्रन्थिवत् समझना चाहिए। मन्त्र की शक्ति का मूल तो चिति-शक्ति ही है। चिदाकाश और चित्ताकाश भी क्रमशः चिति और चित्त के पर्याय हैं जिन में बिना किसी की सहायता के अनेक विद्याओं की जाग्रति देखी जाती है।

मन्त्रों में शक्ति होती है तथा मन्त्रों या वर्णों के पद होते हैं, इसलिए मन्त्र की शक्ति का आधार वर्णों की शक्ति है जो सभी मन्त्र रूप कहे गये हैं। एकाक्षरी कोष में सब वर्णों का अर्थ भी बताया गया है। वर्णों को मातृका भी कहते हैं और उन की शक्ति को मातृका-शक्ति कहा जाता है। शांभवोपाय के चौथे सूत्र (ज्ञानाधिष्ठानं मातृका) में ज्ञान का अधिष्ठान मातृका कहा गया है जो क्रिया रूपी वैखरी का विषय है। मन्त्र की शक्ति का वाक् शक्ति से सम्बन्ध है अथवा यों कहें कि वाक् शक्ति ही मन्त्रों की शक्ति का आधार है, इसीलिए मन्त्रों का जप किया जाता है। मनन करते समय मन का बुद्धि से सम्बन्ध होता है, यह इच्छा रूपी मध्यमा का विषय है। बुद्धि और मन के निर्विषयी होने पर चित्त की एकाग्रता भूमिका आती है जहाँ निर्विषयी ध्यान रह जाता है—'ध्यानं निर्विषयं मनः।' यह ज्ञानरूपा पश्यन्ति का विषय है। इस प्रकार इस क्रम को समझने पर मन्त्र का चित्त से सम्बन्ध

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्पष्ट हो जाता है। परा का स्थान आत्मतत्त्व है जो सब का केन्द्र है।

इसलिए इस (चित्तं मन्त्रः) सूत्र में मन्त्र, वाक्, मन, बुद्धि और चित्त सभी का समावेश है। चित्त का आधार महत्तत्त्व अर्थात् हिरण्यगर्भ बुद्धि है, अतः चित्त की शक्ति का मूल स्थान भी महतत्त्व को ही समझना चाहिए जिसके अनुसन्धान से मन्त्रों की शक्ति का अनुभव शांभवोपाय के सूत्र २२ में कहा गया है। चित्त के चिन्तन सहित मन्त्र का जप करने से मन्त्र वीर्यवान् होता है। वास्तव में यह सब फैलाव एक चिति शक्ति का ही है।

प्रयत्नः साधकः ॥२

शक्ति जागने पर स्वतः साधन करवाती है, साधक को शक्ति की शरण में रहने के अतिरिक्त कोई साधन नहीं करना पड़ता अथवा यों कहें कि शक्ति ही साधक है और उसी का साधन प्रयत्न है। यह कहा जा चुका है कि आणवी दीक्षा यत्नसाध्य है और यह दोनों (शांभवी और शाक्ति) शक्ति-साध्य हैं, इसीलिए इसे सिद्धोपाय भी कहते हैं।

साधक को यहाँ केवल शक्ति की सहायता से परम तत्त्व को प्राप्त करना है। शक्ति की जाग्रति के पूर्व गुरुप्रदत्त मन्त्र के जप द्वारा शक्ति को जाग्रत करने का यत्न किया जाता है, जैसे मोटर के डायनेमों को जाग्रत करने के लिए बाहर से एक लोहे के डण्डे से घुमाया जाता है। परन्तु शक्ति की जाग्रति के पश्चात् मन्त्र के ध्यान मात्र से शक्ति का कार्य अनुभव होने लगता है। ('यदानुध्यायते मन्त्रं, गात्रकम्पोऽथ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

जायते'—योगशिखोपनिषद्)। शक्तियुक्त मन्त्र को सजीव और शक्तिहीन मन्त्र को निर्जीव अक्षरों का समूह समझना चाहिए। शक्तिसम्पुटित मन्त्र को चेतन समझना चाहिए।

मन्त्र क्या है ? इसका रहस्य अगले सूत्र में बताया गया है—

विद्या शरीरसत्ता मन्त्ररहस्यम् ॥३

मन्त्र चैतन्य होने पर जिस शक्ति की जाग्रति होती है, उसे विद्या कहते हैं। कुण्डलिनी का श्री और कुण्डलिनी-जाग्रति का श्रीविद्या नाम विख्यात ही है। मन्त्र के अक्षर तो केवल उसके स्थूल शरीरवत् ही हैं। मन्त्र से सम्बन्धित विद्या के अधिष्ठातृ देवता के साक्षात् होने पर उस मन्त्र की सिद्धि मानी जाती है। इसलिए विद्या की सत्ता अधिष्ठातृ देव में है जो शक्ति द्वारा अभिव्यक्त अथवा प्रत्यक्ष होता है। मन्त्र को उस देव के स्थूल शरीरवत् जानना चाहिए।

शक्ति की अभिव्यक्ति चित्त में प्रकट होती है। गुरुप्रदत्त मन्त्र में गुरु के संकल्प द्वारा चित्त की आंशिक शक्ति बीजरूप से शिष्य में बोई जाती है और वह शिष्य के चित्त में अंकुरित हो कर विकास पाती है। मन्त्र के अक्षर वाहक का काम करते हैं। जैसे बीज में फल, पुष्प, पत्ते सहित पूरा वृक्ष विद्यमान् है, उसी प्रकार तत्सम्बन्धी विद्या का पूरा शरीर बीज रूप से मन्त्र में निहित है। विद्या की सत्ता चित्त से सम्बन्ध रखती है, अक्षरों से नहीं, इसलिए केवल पुस्तकों में लिखे मन्त्र को स्वयं ही ले कर जपने का निषेध किया गया है, क्योंकि वह केवल अक्षर मात्र हैं। जिस प्रकार पाषाण-मूर्त्ति प्राण-प्रतिष्ठा के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पश्चात् ही पूज्या है, उसी प्रकार कोई भी मन्त्र गुरुमुख से प्राप्त होने पर ही प्राणप्रतिष्ठित हो कर जपनीय होता है। मन्त्रों के पुरुश्चरणों आदि द्वारा साधक में पूर्व से विद्यमान् शक्ति विकास पाने लगती है। मन्त्र तो दीपक को प्रज्ज्वलित करने के लिए दियासलाई का कार्य करता है। मन्त्र जिस देवता-सम्बन्धी होता है, जाग्रत होने पर शक्ति उसी देवता का रूप धारण करके वरदायिनी होती है, इसीलिए इसे विद्या कहा गया है अर्थात् विद्या को यहाँ चेतन शक्तिवाचक समझना चाहिए।

मनुष्य के अन्तरात्मा में सब विद्याएँ विद्यमान् हैं, उनका विकास ही उनकी जाग्रति कहलाता है।

गर्भे चित्तविकासोऽविशिष्टविद्यास्वप्नः ॥४

गर्भ (शक्ति की सुप्तावस्था) में चित्त का विकास चेष्टाओं एवं संकल्प-विकल्पादि के रूप में अवशिष्ट (सामान्य) स्तर पर होता है जो जाग्रत शक्ति की अपेक्षा से स्वप्नवत् है।

कुण्डलिनी शक्ति के जागने के पहले मनुष्य की सब शारीरिक, मानसिक बाह्याभ्यन्तर क्रियाएँ सोती हुई शक्ति स्वप्नवत् करवाती है अर्थात् बन्धनयुक्त मनुष्य का जीवन वास्तव में स्वप्न है। उसकी वास्तविक जाग्रति तभी समझनी चाहिए जब कुण्डलिनी जाग कर ईश्वराभिमुख होती है। श्री भगवान् ने गीता में कहा है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

विद्यासमुत्थाने स्वाभाविकी खेचरी शिवावस्था ॥५

कुण्डलिनी के जाग्रत तथा उसके स्वाभाविक क्रियावती होने पर उसकी शक्ति की खेचरी शिवावस्था होती है। 'खे' का अर्थ आकाश है, अतः 'खे चरति इति खेचरी।' यहाँ पर सहस्रार चिदाकाश को 'ख' समझना चाहिए। शक्ति का उत्थान जब चित्ताकाश से उठकर चिदाकाश में और चिदाकाश से परमाकाश रूपी परम तत्त्व में होता है तो उस को खेचरी कहते हैं। यह उसकी शिवावस्था अर्थात् कल्याणकारी मोक्षदायिनी अवस्था है। अब उस शक्ति की जाग्रति का उपाय बतलाते हैं—

गुरुरुपायः ॥६

शक्ति की जाग्रति के लिए शक्तिसमर्थ गुरु की कृपा ही उपाय है।

आगे शक्ति जागने पर मातृका का चक्रों से सम्बन्ध बताते हैं कि मातृका-शक्ति के जागने पर चक्र-ज्ञान होता है—

मातृका चक्रसंबोधः ॥७

मातृका का अर्थ वर्णमाला है अर्थात् हर एक अक्षर में शक्ति है। उस शक्ति को जाग्रत करने के लिए उस पर अनुस्वार लगा कर उसे मन्त्र का रूप दिया जाता है। चक्र से सुषुम्नागत षड्चक्र समझना चाहिए। इन मूलाधारादि छः चक्रों में पूरी वर्णमाला ओत-प्रोत है। विशुद्ध चक्र में १६ स्वर, अनाहत में क से ठ तक बारह अक्षर, मणिपूर में ड से फ तक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

१० अक्षर, स्वाधिष्ठान में ब से ल तक ६ अक्षर, मूलाधार में व श ष स ४ अक्षर तथा आज्ञा चक्र में क्ष और ह दो अक्षर कहे जाते हैं अर्थात् इन वर्णों से सम्बन्धित शक्तियाँ इन चक्रों में स्थित हैं।

यही मातृका-शक्तियाँ (वाक्-शक्ति) जाग्रत होने पर चक्रों का ज्ञान कराती हैं। इनके नाम और स्थान इस प्रकार हैं—परा का स्थान मूलाधार है, पश्यन्ति का स्थान मणिपुर है, मध्यमा का स्थान हृदयस्थ अनाहत चक्र है और वैखरी का स्थान विशुद्ध चक्र है। बिना स्वरों के किसी मन्त्र या पद का उच्चारण नहीं हो सकता। इन चक्रों पर धारणा-ध्यान रूपी संयम करने से अनेकों सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन है।

इन मातृकाओं का सम्बन्ध नाड़ियों से भी है। स्वरों का सम्बन्ध इड़ा से, क से म तक अक्षरों का सम्बन्ध पिंगला से और शेष आठ अक्षरों का सम्बन्ध सुषुम्ना से कहा गया है। यदि चक्र का अर्थ संसार-चक्र लिया जावे तो योगदर्शन के अनुसार 'सूर्य संयमात भुवनज्ञानम्' सूत्र में सूर्य से सूर्यद्वार अर्थात् सुषुम्ना कही गयी है।

शरीरं हविः ॥८

गुरुकृपा-प्राप्त शिष्य जिसकी कुण्डलिनी जाग्रत हो गयी है, उसका शरीर योगाग्नि के लिए हवि रूप है। जागने पर शक्ति अग्निरूपा है और उससे शरीर की शुद्धि होने के कारण शरीर को हवि कहा गया है। शक्ति योगी को उस अवस्था की ओर ले जाती है जिसका उल्लेख श्वेताश्वतरोपनिषद् की निम्न पंक्तियों में किया गया है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखे समुत्थिते,
पंचात्मके योगगुणे प्रवृत्ते ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः,
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥ —२, १२

पृथिवी, जलादि का वेध होने पर पंचभूतात्मक योग का अनुभव हो कर जिस योगी का शरीर योगाग्निमय हो गया है, उसे न रोग होता है, न वृद्धावस्था प्राप्त होती है और न उसकी असामयिक मृत्यु ही होती है। यहाँ यह बात विशेष ध्यान रखने की है कि यह अवस्था भूतजय होने पर ही प्राप्त होती है। कहा भी है—

धमाधर्म हविः प्रदीप्ते योगाग्नौ मनसा ।

ज्ञानं अन्नम् ॥९

ज्ञान उस योगी का अन्न है। 'ज्ञानं बन्धः' की परिभाषा के अनुसार योगी बन्ध रूपी ज्ञान को खा जाता है अर्थात् अपने में विलीन कर लेता है।

विद्यासंहारे तदुत्थस्वप्नदर्शनम् ॥१०

विद्या के समाधि में विलीन होने पर उससे उदय होने वाले उस विद्या से सम्बन्धित स्वप्नों अर्थात् ज्योति आदि का दर्शन होता है। देवताओं, महात्माओं और देवमन्दिरों के दर्शनों को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। उक्त ज्योति-दर्शनादि समाधि लगने से ठीक पूर्व अथवा समाधि के तुरन्त पश्चात् अर्धसमाधि अवस्था में होते हैं, इसीलिए इनको यहाँ स्वप्नदर्शन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहा गया है। यह ज्योतिदर्शन तीन प्रकार के हैं,—बाह्य, मध्यम और अभ्यन्तर। जाग्रत अवस्था में खुली आँखों से जो ज्योतिदर्शन होते हैं, वे बाह्य दर्शन हैं। आँखें बन्द रहते त्रिपुटी सहित ध्यानावस्था में जो दर्शन होते हैं, वे दर्शन मध्यम कहलाते हैं। त्रिपुटी को अर्धविलीनावस्था में जो दर्शन होते हैं, वे अभ्यन्तर हैं। उस समय दृष्टापन का अभाव रहता है और त्रिपुटी की जाग्रति होने पर साधक कहता है कि मुझे ऐसी ज्योति के दर्शन हुए।

प्रत्येक विद्या का देवता होता है और प्रत्येक देवता की विशेष सिद्धियाँ होती हैं, जैसे सरस्वती विद्या की देवता है और लक्ष्मी धन की। इनके मन्त्र भी विभिन्न हैं जिनके जपादि द्वारा समाधि लगने पर वे मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं और साधक को सिद्धिसूचक स्वप्न होते हैं। कलियुग में देवता प्रत्यक्ष नहीं होते।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

तृतीयोन्मेष (आणवोपाय)

आणवोपाय को तीसरा उन्मेष कहा गया है अर्थात् इसे निम्नस्तरीय उन्मेष समझना चाहिए। आत्मतत्त्व से चैतन्य-भाव का उन्मेष प्रथम उन्मेष है। चैतन्यभाव से उदित शक्ति दूसरा उन्मेष है और चैतन्यभाव का चित्त से तादात्म्य होने पर अहम्भाव का अणुत्व (व्यष्टि) रूप से उदय होना निम्नस्तरीय तीसरा उन्मेष है। बिना शक्तिपात् के ही जिस साधनक्रम के द्वारा इस अणुत्वभाव से ऊपर उठा जाता है, वह आणवोपाय है।

यह कहा जा चुका है कि कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के उपरान्त शाक्तोपाय और शाम्भवोपाय का उत्थान होता है, परन्तु बहुसंख्यक साधक ऐसे हैं जो कुण्डलिनी-जागरण से सर्वथा अपरिचित होते हुए भी किसी-न-किसी आध्यात्मिक साधन में लगे रहते हैं, उन्हीं के लिए आणवोपाय कहा जाता है। यह भी देखा जाता है कि योग्य गुरु से शक्तिपातरहित साधन लेकर उस के विधिवत् अनुष्ठान से किसी अंश में कुण्डलिनी की जाग्रति हो जाती है और योग्य समय आने पर सिद्ध गुरु मिल जाता है। यह भी देखा गया है कि देवता भी परोक्ष में रह कर शक्तिपात करके साधकों पर अनुग्रह करते हैं। यदि साधन करते-करते कुण्डलिनी की जाग्रति न भी हो,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

तो भी आणवोपाय की साधना व्यर्थ नहीं जाती, उस से अन्तःकरण की शुद्धि तो होती ही है।

आत्मा चित्तम् ॥१

आणवभाव में, चित्त और आत्मा दोनों का तादात्म्य होने से, साधक चित्त को ही आत्मा समझता है, चित्त पर पड़े आत्मा के चैतन्य-प्रकाश को उस से भिन्न नहीं समझता। जैसे स्वर्ण पर सूर्य की किरणें पड़ने से जो कान्ति दृष्टिगोचर होती है, वह कान्ति स्वर्ण से भिन्न प्रकाश के कारण है, स्वर्ण के कारण नहीं। प्रकाश के अभाव में वह कान्ति दृष्टिगोचर नहीं होती, परन्तु सामान्य मनुष्य स्वर्ण की कान्ति को स्वर्ण से भिन्न नहीं समझता। यह तादात्म्य कुछ अंश तक शाक्तोपाय और शाम्भवोपाय में भी बना रहता है, परन्तु शाम्भवोपाय में आत्मा को 'चैतन्यं आत्मा' कह कर साधक का लक्ष्य चित्त से हटा कर चित्त पर प्रतिभासित आत्मा के चैतन्य प्रकाश की ओर कराया गया है, जो स्वर्ण की कान्ति के सदृश्य है।

वास्तविकता यह है कि आणवोपाय के साधक को भी अन्ततः आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए शाम्भवोपाय के लक्ष्य पर ही पहुँचना पड़ेगा। इसलिए दोनों के साधन में ही अन्तर है, अन्तिम लक्ष्य में कोई अन्तर नहीं है। शक्ति के जागने के पश्चात् चित्त को आत्मा मानता हुआ साधक भी अपने अन्तर में एक चेतन शक्ति का अनुभव करने लगता है जो उस के दृष्टिकोण में परिवर्तन करने के लिए पर्याप्त होता है।

यहाँ यह भी विचारणीय विषय है कि चित्त क्या है? क्योंकि उस का नाम उपरोक्त ३६ तत्त्वों में कहीं नहीं आता।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपरोक्त पाँच कला और उनके अन्तर्गत ३६ तत्त्व अथवा सांख्य के २४ तत्त्व कहे गये हैं जो समष्टि ब्रह्माण्ड से सम्बन्धित हैं। ऐतरेयोपनिषद् में समष्टि से व्यष्टि में आने के लिए लोक और लोकपालों का वर्णन है, जैसे ब्रह्मा के मुख से वाक् का उदय हुआ और उस से अग्नि का, नासिका से प्राण और प्राण से वायु का, दृष्टि से चक्षु और चक्षु से आदित्य का, हृदय से मन और मन से चन्द्रमा का उदय हुआ, इत्यादि। पुराणों में और भी विस्तार से इस का वर्णन किया है। यह सब ब्रह्माण्ड की सृष्टि का वर्णन है। आगे चल कर कहा गया है कि अग्नि ने वाक् बन कर व्यष्टि शरीर के मुख में प्रवेश किया, वायु ने प्राण बन कर नासिका में प्रवेश किया, आदित्य ने चक्षु बन कर दृष्टि में प्रवेश किया और चन्द्रमा ने मन बन कर हृदय में प्रवेश किया, इत्यादि।

अन्त:करण चतुष्टय के मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार—चार कार्य हैं। अन्य शास्त्रकारों के मतानुसार महतत्त्व से बृहस्पति, बृहस्पति से व्यष्टि की बुद्धि, समष्टि अहङ्कार से सगुण शिव, सगुण शिव से व्यष्टि का अहङ्कार और सगुण विष्णु से चित्त इत्यादि की उत्पत्ति होती है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश की त्रिमूर्तियों को माया के अन्तर्गत माना गया है जो सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण के अधीश्वर हैं। इससे प्रतीत होता है कि चित्त व्यष्टि का अङ्ग है और उसे समष्टि महतत्त्व का अणु समझना चाहिए। इसीलिए आणव मल व्यष्टि स्तर पर ही पाया जाता है, समष्टि में नहीं। अत: चित्त को आत्मा मानना आणव मल से ही आवृत होना है। चित्त ही मन, बुद्धि, अहङ्कार तीनों की पृष्ठभूमि है जिस में सब संस्कार संचित

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहते हैं, इसीलिए योगदर्शन ने 'चित्तवृत्ति निरोधः' को ही मुख्य साधन माना है।

आत्मा कभी चित्त से तादात्म्य नहीं करता—'नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावोऽयं आत्मा।' इसलिए चित्त को आत्मा कहना अज्ञान है और अज्ञान का कार्य बन्धन है। बन्धन का रूप अगले सूत्र में बताते हैं—

ज्ञानं बन्धः ॥२

ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय दोनों का समावेश होता है। ज्ञाता में अहम् भाव और ज्ञेय में इदम् भाव रहता है। यह ज्ञान जब रागयुक्त होता है तो बन्धन का कारण होता है। राग विद्या कला का छठा तत्त्व है। इस कला का विद्या नाम पाँचवें तत्त्व के नाम पर है। प्रथम तत्त्व माया है, फिर काल, कला, नियति तीन शुद्ध तत्व हैं। इन के ज्ञान को विद्या कहा गया है और इन को जान कर इन में आसक्त होना राग है। विद्या और राग अशुद्ध तत्त्व हैं। ये पाँचों माया के पाँच कञ्चुक कहलाते हैं जिन से आवृत आत्मा पुरुष या जीव हो जाता है। पुरुष विद्या कला का सातवाँ तत्त्व है। गीता में इस कला को परा प्रकृति कहा है जिससे—'जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।'

राग को ही मोह भी कहते हैं। आत्मा ज्ञानस्वरूप है और आनन्द-स्वरूप भी, परन्तु जब वह आनन्द उसका ज्ञेय बन जाता है अर्थात् विषय का रूप धारण कर लेता है तो वह भी 'इदम्' की क़ोटि में आ जाता है। यह ऊपर कहा जा चुका है कि ज्ञान को शिव और आनन्द को शक्ति कहते हैं। ज्ञेय से प्राप्त आनन्द को सुख कहते हैं। योगदर्शन ने सुख-भोग के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त (मण्डल १०, सूक्त १२९)

१५—समष्टि अहङ्कार	त्रिगुणात्मक		
१६—,, मन	सात्विक अहङ्कार से		
१७ से २१—५ ज्ञानेन्द्रियाँ	राजस अहङ्कार से		
२२ से २६—५ कर्मेन्द्रियाँ			
२७ से ३१—५ तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध	तामस अहङ्कार से		प्रतिष्ठा कला
३२—आकाश	,,	,,	
३३—वायु	,,	,,	
३४—अग्नि	,,	,,	
३५—आपः	,,	,,	
३६—पृथिवी	निवृत्ति कला		

... नासीद्रजो नो व्योमापरोयत ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथ को वेद यत आबभूव ।६
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव, यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद ।७

विमर्ष विमर्षो नाम विश्वाकारेण विश्वप्रकाशेन ।
विश्वसंहारेण वा अक्रमोऽहमिति स्फुरणम् ॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त (मण्डल १०, सूक्त १२९)

अक्षर परब्रह्म ☞

'नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं, नासीद्रजो नो व्योमापरोयत्।
किमवरीवः कुहः कस्य शर्मन्नम्भः, किमासीद् गहनं गभीरम् ॥१
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि, न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।'

तत्त्व	कला	उन्मेष	सूक्त
शुद्धतत्त्व			
		प्रथम उन्मेष	
१—शिव	शान्त्यातीता	अध्यात्म भाव	आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किंचनाऽऽस ।२
२—शक्ति		अधिभूत भाव	तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतमसलिल सर्वमा इदम् ।
		द्वितीय उन्मेष	
३—सदाशिव	शान्ति	अहमिदं विमर्ष	तुच्छेनाभ्यपिहितं यदासीत्, तपसस्तन्महिनाऽजायदेकम् ।३
४—ईश्वर		तृतीय उन्मेष	कामस्तदग्रे समवर्तताधि,
		अहम् विमर्ष	
५—शुद्ध विद्या		इदम् विमर्ष	मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
शुद्धाशुद्ध तत्त्व			
६—माया	विद्या	असत्	सतोबंधुमसति निरविन्दन्, हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषाः ।४
७—काल (माया के ५ कञ्चुक)		श्रीमद्भगवद्गीतोक्त	तिरश्चिनो विततोरश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरिस्विदासीत् ।
८—कला		परा प्रकृति	रेतोधा आसन् महिमान आसन् स्वधा अवस्तात् प्रयतिः
९—नियति			परस्तात् ।५
१०—विद्या			
११—राग		जीवभाव (शिवसूत्रोक्त शांभव-शाक्ताणव) तीन जीवोन्मेष	
१२—पुरुष			

अशुद्ध तत्त्व (अपरा प्रकृति)

तत्त्व		कला
१३—अव्यक्त	तीनों गुणों की साम्यावस्था	प्रतिष्ठा कला
१४—महत्	,, ,, विषमावस्था	
१५—समष्टि अहङ्कार	त्रिगुणात्मक	
१६— ,, मन	सात्विक अहङ्कार से	
१७ से २१—५ ज्ञानेन्द्रियाँ	राजस अहङ्कार से	
२२ से २६—५ कर्मेन्द्रियाँ		
२७ से ३१—५ तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध	तामस अहङ्कार से	
३२—आकाश	,, ,,	
३३—वायु	,, ,,	
३४—अग्नि	,, ,,	
३५—आपः	,, ,,	
३६—पृथिवी	निवृत्ति कला	

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथ को वेद यत आबभूव ।६
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव, यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद ।७

विमर्प विमर्पो नाम विश्वाकारेण विश्वप्रकाशेन ।
विश्वसंहारेण वा अक्रमोऽहमिति स्फुरणम् ॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal.

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पश्चात् रह जाने वाले संस्कार को राग कहा है । इसलिए आनन्द के ज्ञान को, जो बन्धन का कारण है, भौतिक विषयों के स्तर पर विषयसुख, उससे सूक्ष्म मनोराज्य के स्तर पर वैकल्पिक सुख और उससे भी सूक्ष्म संस्कार रूपी मोह-स्तर पर रस समझना चाहिए। भगवान् ने गीता में कहा है—

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परम् दृष्ट्वा निवर्तते ।

यहाँ रस का अर्थ विषयसुखभोग का संस्कार है। इस संस्कार का अधिष्ठान चित्त है। जब तक यह रस निवृत्त नहीं होता, तब तक उसका ज्ञान बन्धनरूप है। ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय की त्रिपुटी में दृश्य की विद्यमानता रहती है, समाधि में त्रिपुटी नहीं रहती, ज्ञाता और ज्ञेय दोनों का अभाव हो जाता है, क्योंकि 'अहम्' और 'इदम्' दोनों ही नहीं रहते, परन्तु 'रस' बना रहता है। ज्ञेय की प्रधानतायुक्त समाधि में बन्धन का बीजरूप संस्कार बना रहता है, किन्तु 'अहम्' की वृत्ति की प्रधानतायुक्त समाधि आत्मा के ज्ञान में सहायक होती है। इसे वेदान्त में अहंग्रह उपासना कहा है—

निर्विकारतयावृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः ।
वृत्ति विस्मरणं सम्यक्समाधिरभिधीयते ॥

आनन्द रूपी 'इदम्' को ज्ञेयरूप से भौतिक विकल्प संस्कारों के स्तर पर स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतर समझना चाहिए। इसलिए बन्धन से मुक्ति के लिए पहले भौतिक ज्ञान से ऊपर उठना है, फिर विकल्प ज्ञान से ऊपर उठना है और तब फिर संस्कारों के स्तर से ऊपर उठना है। यही साधन का सोपानक्रम है। सांख्य के अनुसार चित्त को आत्मस्वरूप मानना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अविद्या है। उसमें 'अहम् वृत्ति' को मोह कहते हैं और ज्ञेय में रागयुक्त वृत्ति को महामोह कहते हैं।

यह सूत्र तीनों उपायों में समान रूप से लागू है, किन्तु उत्तरोत्तर तीनों मलों की तारतम्यतानुसार क्षीण होता चला जाता है, जैसा कि तीसरे सूत्र में स्पष्ट है—

कलादिनां तत्त्वानां अविवेको माया ॥३

चित्त पर आत्मा के चैतन्य-प्रकाश के तादात्म्य से अहंकार का उदय होता है। इसीलिए मनुष्य अपने अहंकार को ही अपना स्वरूप मानता है। चित्त का सम्बन्ध इन्द्रियों से है, इसलिए उस अहंता के इन्द्रियों के स्तर पर उतर कर द्रष्टा, कर्ता, भोक्ता का रूप धारण करने से मनुष्य इन्द्रियाभिमानी बन जाता है। इन्द्रियों का सम्बन्ध देह से है जो बाह्य दृश्य के ज्ञान, कर्म और भोग की साधन हैं, इसलिए शरीर के स्तर पर वह देहाभिमानी बन जाता है। कारण, सूक्ष्म और स्थूल रूप से देह के तीन विभाग किये जाते हैं। परन्तु इन तीनों के पृथक्करण को सामान्य मनुष्य नहीं समझता कि तीनों शरीर पाँचों कलाओं के संघात से बने हैं अर्थात् प्रत्येक प्राणी अपने आत्मतत्त्व का पाँचों कलाओं के समूह से तादात्म्य कर के उसको तदाकार ही मानता है। कलाओं के तत्त्वों से संबद्ध अविवेक को माया कहते हैं, इसलिए आणवोपाय के साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह उक्त कलाओं के पृथक्करण को समझे और अनुभव करे।

शरीरे संहारः कलानाम् ॥४

इस सूत्र में व्यष्टि शरीर में तत्सम्बन्धी कलाओं का संहार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहा गया है जिनका वर्णन अगले सूत्र में दिया गया है। यहाँ शरीर भौतिक स्थूल शरीर का वाचक है जैसा कि अगले सूत्र से स्पष्ट है। स्थूल देह अशुद्ध कलाओं का निर्मित है और देहाध्यास इतना प्रबल होता है कि उसके कारण अभिनिवेश रूपी अन्धतामिस्र से छुटकारा पाना असम्भवप्रायः है। इसलिए सर्वप्रथम उससे छूटने का साधन कहा जाता है।

तत्त्वों की शुद्धि द्वारा ही उन के पृथकत्व का ज्ञान समझ में आ सकता है। अहंकार से लेकर पृथ्वी पर्यन्त सभी तत्त्व अव्यक्त शक्ति की महत्तत्त्व रूपी व्यक्त दशा के परिणाम मात्र हैं। इसलिए सब तत्त्व एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हुए भी विभिन्न स्तरों पर उसी एक ही शक्ति के रूपान्तर हैं। जैसे एक सूत्र में ग्रन्थियाँ लगा कर माला बना दी जाय तो वह सूत्र ही विभिन्न मनके भी बन जाता है और मनकों को पिरोए रखने का कार्य भी करता है। इसी प्रकार एक ही शक्ति स्पन्दित हो कर विभिन्न तत्त्वों के रूप में भी परिणित हुई है और उन सब की तारतम्यता को जोड़े हुए भी है। उपनिषदों में इस सूत्र को प्राण कहा है जो आत्मा की सत् शक्ति है—

यदिदं किंच जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।

—कठोपनिषद्

उपरोक्त संहारक्रम अगले सूत्र में कहे हुए सोपानक्रम के अनुसार चार स्तरों पर है—

नाडीसंहार भूतजय कैवल्य भूतपृथकत्वानि ॥५

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का बाह्य ज्ञान नाड़ियों द्वारा होता है। नाडियों की व्यापकता सारे शरीर में है और उनका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सम्बन्ध सुषुम्ना नाड़ी से है। नाड़ियों द्वारा प्राण-शक्ति का प्रवाह होता है। प्राण सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से जोड़ता है और सूक्ष्म शरीर, पाँच ज्ञानेन्द्रियों के शब्द-स्पर्शादि ज्ञान पाँच तत्त्वों से सम्बन्धित हैं–पृथ्वी से गन्ध, जल से रस, अग्नि से रूप, वायु से स्पर्श और आकाश से श्रवण। पृथ्वी का सम्बन्ध मूलाधार से, जल का स्वाधिष्ठान से, अग्नि का मणिपूर से, वायु का अनाहत से और आकाश का विशुद्ध चक्र से सम्बन्ध है। इन चक्रों का स्थान सुषुम्ना के अन्दर है। हठयोग की क्रियाओं द्वारा नाड़ी-शुद्धि की जाती है और प्राणायाम द्वारा प्राण का संयम आता है। नाड़ियों की शक्तियों के लयक्रम को संहार कहा गया है और यह कार्य प्राण की गति को इच्छानुसार संचालित करने से ही हो सकता है। इसलिए नाड़ी-शुद्धि को नाड़ी-संहार जानना चाहिए।

कर्मेन्द्रियों के व्यापार भी इसी प्रकार समझ लेने चाहिएँ। यह सब व्यापार प्राण-शक्ति के द्वारा संचालित होते हैं जो नाड़ियों में प्रवाहित हो कर बाह्य दृश्य से सम्बन्ध कराती है। उसके अन्तर्मुखी होने पर प्रतिप्रसव अर्थात् उलट क्रम संपादित होता है। प्राण का सुषुम्ना में विलीनीकरण होने से बाह्य ज्ञान का विच्छेद हो जाता है। इसे ही यहाँ नाड़ी-संहार कहा गया है। तत्पश्चात् प्राण-शक्ति के संयम द्वारा पाँचों तत्त्वों के ऊपर जय प्राप्त की जाती है जो भूतजय का विषय है। इस में योगी को अपने देहस्थ पाँचों तत्त्वों के घटाने-बढ़ाने अथवा स्थूल-सूक्ष्म बनाने का सामर्थ्य आ जाता है अर्थात् उसे अणिमादि सिद्धियाँ आ जाती हैं, परन्तु देहाभिमान बना रहता है।

भूतकैवल्य में योगी सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से पृथक्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर लेता है, परन्तु स्थूल शरीर में रहने पर बाह्य दृश्य का ज्ञान और सम्बन्ध स्थूल शरीर के आश्रित पूर्ववत् ही रहता है। भूतपृथकत्व में सूक्ष्म शरीर को अपने ज्ञान के लिए स्थूल शरीर की अपेक्षा नहीं रहती। योगदर्शन के विभूतिपाद के सूत्र ४२ में इसे बहिर्विकल्पिता महाविदेहा वृत्ति कहा है। ऐसे योगी को परकाय-प्रवेश की सिद्धि आ जाती है।

उक्त चारों अवस्थाओं का वर्णन, जैसा यहाँ दिया गया है, योगदर्शन के अनुसार संयम के सिद्ध होने पर सिद्ध होता है, परन्तु आरम्भावस्था में क्रमशः प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और समाधि का अभ्यास होना आवश्यक है। इस क्रम से स्थूल शरीर के अध्यास पर जय पाई जाती है। कुण्डलिनी जाग कर सब साधन स्वतः कराती है, परन्तु सामान्य साधक को यह सब अपने परिश्रम से करना पड़ता है जो अति कष्टसाध्य है।

मोहावशात् सिद्धिः ॥६

सिद्धियाँ यद्यपि आत्मा के सामर्थ्य की अभिव्यक्ति मात्र हैं, किन्तु योगी चित्त के अणुरूप अहंभावरूपी मोह के कारण उनको सिद्धियाँ कहता है, इसीलिए कहा है कि—

मोहजयात् अनन्तभोगात् सहजविद्याजयः ॥७

उपर्युक्त साधन द्वारा परकाय-प्रवेश के सामर्थ्य एवं अनुभूति से स्थूल शरीर का अध्यास रूपी मोह नष्ट होता है। मोहजय (अपने चित्त के अणुत्व रूपी मोह का जय) कर के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

जब योगी अनन्त में प्रवेश करता है तो विद्या कला (माया) का स्वाभाविक जय हो जाता है।

न प्राणायामात् परमं तपः, ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।

सहज का अर्थ स्वाभाविक है। विद्या को माया का चौथा कञ्चुक कहा गया है अर्थात् विद्या का अर्थ बाह्य ज्ञान है, इसलिए विद्या से माया, काल, कला, नियति का ज्ञान समझना चाहिए।

जाग्रदद्वितीय करः ॥८

जाग्रत का बाह्य दृश्य उपर्युक्त योगी को दूसरे हाथ के सदृश्य है अर्थात् गौण है। कर का अर्थ प्रकाशक अथवा सहायक समझना चाहिए। अर्थात् वह योगी बाह्य दृश्य के ज्ञान के लिए स्थूल देह की अपेक्षा नहीं रखता कि उसकी सहायता के बिना बाह्य ज्ञान नहीं होगा।

नर्तक आत्मा ॥९

सूत्र ९ और १० में अन्तरात्मा से आत्मा का भेद रखने से यहाँ 'चित्तं आत्मा' ही समझना चाहिए। नर्तक एवं रंग-भूमि की उपमा दोनों के भेद और सम्बन्ध को अच्छी तरह समझने में सहायक है।

चित्त पर अन्तरात्मा का प्रकाश अहंकार के रूप में उदित होता है जो चित्त की वृत्तियों के साथ नृत्य-सा करता रहता है। नर्तक की उपमा देकर कहा गया है कि उपर्युक्त सिद्ध योगी इतना परिश्रम कर के भी आणव स्तर से ऊपर नहीं उठता।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

रङ्गोन्तरात्मा ॥१०

उसका आधार रूप अन्तरात्मा ही अचल स्थिर होने के कारण उसके नृत्य की रङ्गभूमि है। उपनिषदों में अन्तरात्मा को ईश्वर माना है—

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको
बहूनां यो विदधाति कामान् ॥
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां
शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥

जो अनित्य पदार्थों में नित्यस्वरूप तथा चेतनों में चेतन है और जो अकेला ही अनेकों की कामनाएं पूरी करता है, अपनी बुद्धि में स्थित उस अन्तरात्मा को जो विवेकी पुरुष देखते हैं, उन्हीं को नित्य शान्ति प्राप्त होती है, अन्यों को नहीं।

ईश्वर एक है, इसलिए सब प्राणियों का अन्तरात्मा एक है जिसके प्रकाश से अनेक चित्त प्रकाशित हो कर अनेकों चित्ताभिमानी जीव कहलाते हैं। इसी कारण यहाँ अन्तरात्मा को रङ्गभूमि से उपमित किया है।

प्रेक्षकाणीन्द्रियाणि ॥११

उसकी इन्द्रियाँ बाह्य दृश्य की आसक्ति छोड़ कर अन्तर्मुखी हो जाती हैं, मानों उसके नृत्य को देखने लगती हैं अथवा उस सिद्ध योगी को स्थूल शरीर की सहायता के बिना बाह्य दृश्य का ज्ञान होता है, इसलिए इन्द्रियों को प्रेक्षक मात्र कहा गया है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

धीवशात् सत्त्वसिद्धिः ॥१२

धी (बुद्धि की वृत्तियों) के वश में अर्थात् शान्त हो जाने पर सत्त्व अर्थात् बुद्धि की शुद्धि हो जाती है। उसके हो जाने पर ही योग की स्थिति आती है—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः। —गीता, १६-१

सिद्धः स्वतन्त्रभावः ॥१३

ऐसे सिद्ध योगी का भाव स्वतन्त्र होता है, क्योंकि—

यथा तत्र तथान्यत्र ॥१४

जैसा वहाँ, वैसा ही सर्वत्र व्यवहार करता है। परन्तु इस स्वतन्त्रता में सदा एक भय भी रहता है कि वह स्वच्छन्द हो कर अपने संस्कारों के वश कहीं पतनाभिसुख न हो जावे। इसलिए—

बीजावधानम् ॥१५

संस्कारों के बीजरूपी परा शक्ति पर लक्ष्य रखते हुए सावधान रहना चाहिए क्योंकि संस्कार ही संसार और बन्धन के कारण हैं जो परा शक्ति के आधार पर अंकुरित होते हैं। संस्कारों में भोगों का रस विद्यमान् रहता है जो भोगों के त्याग से नष्ट नहीं होता, वरन्—

परं दृष्ट्वा निवर्तते। —गीता

—परमार्थतत्त्वरूप ब्रह्म का प्रत्यक्ष दर्शन होने पर ही नष्ट होता है। इसीलिए कहा गया है कि संस्कारों को अंकुरित

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

करने वाली परा शक्ति रूपी बीज पर लक्ष्य रखने से योगी भोगासक्ति से बच सकता है, और—

आसनस्थः सुखं ह्रदे निमज्जति ॥१६

इधर-उधर बहिर्चेष्टाओं का त्याग करके, अपने आसन पर स्थित रह कर सुखपूर्वक चिदाकाश रूपी ह्रद में मग्न होता है।

स्वमात्रा निर्माणमापादयति ॥१७

वह अपनी इच्छा शक्ति से चित्त और दूसरे देहों का भी निर्माण कर सकता है।

'निर्माण चित्तानि अस्मिता मात्रात् ।'

—योग दर्शन ४, ४

यह सब कुछ कर सकने में समर्थ होता हुआ भी वह बन्धनयुक्त नहीं होता।

विद्याऽविनाशे जन्मविनाशः ॥१८

यद्यपि अनेकों चित्तों, अनेकों देहों का निर्माण कर के विहार करता हुआ योगी अविद्या में ही कहा जाता है, तो भी वह मुक्त ही होता है, उस का पुनर्जन्म नहीं होता।

अगले सूत्र का उक्त ५१वें सूत्र से फिर सम्बन्ध जोड़ते हुए साधक को सावधान रहने की चेतावनी है।

कवर्गादिषु माहेश्वराद्याः पशुमातरः ॥१९

कवर्गादि से वर्गों में अधिष्ठित माहेश्वर्यादि प्रभृति जो शक्तियाँ हैं,
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

वे पशुभाव की जननी हैं। अविद्या से सावधान रहने के लिए इस सूत्र की आवश्यकता है क्योंकि बाह्याभ्यन्तर जगत् की सृष्टि शब्द से है और शब्द वैखरी वाणी का विषय है जिस का आधार वर्णमाला (मातृका) है। वर्णमाला को आठ वर्गों में माना गया है—अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग और शवर्ग। इनकी शक्तियाँ इस प्रकार हैं—माहेश्वरी, ब्राह्मी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा और महालक्ष्मी। पाठान्तर में कहीं-कहीं वैष्णवी की जगह नारायणी, चामुण्डा की जगह नरसिंही और महालक्ष्मी की जगह अपराजिता भी आता है।

भावनोपनिषद् में कहा है—'काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य पुण्य पापमयाः ब्राह्मयादि अष्ट शक्तयः।' ये मातृदेवता प्रकट योगिनियाँ कहलाती हैं। इन को 'पशु मातरः' इसलिए कहा गया है क्योंकि इन से मनुष्य (जीव) पशु की तरह पाश में बँधे हुए हैं। माहेश्वर्यादि शक्तियाँ जाग्रत होने पर योगी को बहकाती हैं। योगी (साधक) को चाहिए कि ऐसे आदेशों को सत्य मान कर पथभ्रष्ट न हो और अपनी विवेकबुद्धि से काम ले। अब साधन की ओर आते हैं।

त्रिषु चतुर्थं तैलवदासेच्यम् ॥२०

तीनों अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) को चौथी (तुरीय) से तेल की तरह सींचते रहना चाहिए। इस सूत्र और आगे के सूत्रों को भली भाँति समझने के लिए प्राण का स्वरूप समझना आवश्यक है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपनिषदों के पढ़ने से यह स्पष्ट है कि ब्रह्मा के संकल्प से सर्वप्रथम प्राण उदय होता है (देखें प्रश्नोपनिषद् के तीसरे प्रश्न की तीसरी श्रुति, छठे प्रश्न की चौथी श्रुति, मुण्डकोपनिषद् के पहले खण्ड की तीसरी श्रुति, और कठोपनिषद् के दूसरे अध्याय की तीसरी वल्ली की दूसरी श्रुति, इत्यादि) और प्राण से सारे विश्व की सृष्टि होती है। इस प्रकार प्राण के विभु और अणु दो रूप हो जाते हैं। 'अणुश्च' (ब्रह्मसूत्र २, ४, १३) पर अपने भाष्य में शंकरभगवद्पाद कहते हैं कि आधिदैविक हिरण्यगर्भ रूप से समष्टि प्राण विभु और आध्यात्मिक रूप से व्यष्टि प्राण अणु है। उपरोक्त उद्धृत श्रुतियों में ब्रह्म से सर्वप्रथम उदय होने वाला प्राण विभु प्राण है जो विश्व के सब तत्त्वों में परिणित हो जाता है।

उक्त श्रुतियों में मन का नाम आता है, किन्तु बुद्धि का नहीं। इस से प्रतीत होता है कि हैरण्यगर्भ विभु प्राण ही समष्टि बुद्धि है जिस को सांख्य में महत्तत्त्व और कठोपनिषद् में महानात्मा कहा गया है। शंकरभगवद्पाद ने भी अपने भाष्य (ब्रह्मसूत्र १, ४, १) में कहा है कि श्रुतियों में जो सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाली हैरण्यगर्भ बुद्धि कही गयी है, वह सब प्राणियों की बुद्धि की परा-प्रतिष्ठा है। उसे ही यहाँ (कठोपनिषद् में) महानात्मा कहा गया है—

इन्द्रियेभ्य परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥

कठोपनिषद् १, ३, १०-११

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन श्रुतियों से स्पष्ट है कि समष्टि प्राण और बुद्धि दोनों महत्तत्त्व ही है जो अध्यात्म-स्तर पर अणु रूप से अलग-अलग प्रतीत होता है। इसलिए प्राण और चित्त दोनों का पारस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध है। प्राण के निरोध से चित्त का निरोध और चित्त के निरोध से प्राण का निरोध होता है, क्योंकि ऊपर के स्तर पर दोनों एक ही हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में दोनों की पृथकता प्रतीत होती है, परन्तु तुरीय अवस्था (समाधि) में दोनों एक हो जाते हैं। इस सूत्र में तीनों अवस्थाओं का चौथी से तेलवत् सिंचन का अभिप्राय अणु रूप चित्त और प्राण दोनों की पृष्ठभूमि में विभु प्राणात्मा या महानात्मा का अनुभव करते रहना है। अतः नीचे के दोनों सूत्र साधनरूप हैं।

मग्नः स्वचित्तेन प्रविशेत् ॥२१

प्राणसमाचारे समदर्शनम् ॥२२

उपरोक्त दो सूत्रों में से पहले में जाग्रत से समाधि में लय-क्रम (अप्यय) और दूसरे में व्युत्थान दशा का वर्णन है। जब मन, बुद्धि सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ आत्मा में स्थित हो जाती हैं तो उसी अवस्था को परमगति कहते हैं और इसी स्थिर इन्द्रिय-धारण को ही योग भी कहते हैं (देखें कठोपनिषद् २, ३, १० और ११)। ऐसी अवस्था अर्थात् समाधि की प्राप्ति के लिए पहले सूत्र में कहा गया है कि ध्यानमग्न हो कर चित्त के साथ समाधि में प्रवेश करे। यह सर्वविदित है कि प्राणों का लय होने पर समाधि लगती है। प्राणों के लय के साथ-साथ चित्त का भी लय हो जाता है। यह पहले ही कहा जा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

चुका है कि प्राण-शक्ति क्रिया-रूपा है और चित्त ज्ञान-रूप है। यहाँ इस बात की ओर संकेत किया गया है कि प्राण-निरोध में चित्त को भी साथ रखना चाहिए अन्यथा केवल प्राण के साधन से जड़ समाधि की प्राप्ति होगी। यदि प्राण और चित्त दोनों का एक साथ लय होगा तो दोनों अपने कारण रूप विभु प्राण में लीन हो कर चेतन समाधि का अनुभव करायेंगे। अतः बुद्धिमान् मनुष्यों को चाहिए कि—

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छान्त आत्मनि॥

—कठोपनिषद् १, ३, १३

अर्थात् वाणी (वाणी में सभी इन्द्रियों का उपलक्षण है) को मन में लय करे, मन को ज्ञानात्मा (बुद्धि) में ले जाय, ज्ञानात्मा रूपी बुद्धि को महानात्मा (समष्टि बुद्धि) में ले जाय और उस (महानात्मा) को शान्तात्मा अर्थात् अन्तरात्मा रूपी ब्रह्म में लय करे।

व्युत्थान दशा में महानात्मा से अणु बुद्धि और अणु प्राण का प्रथक्-प्रथक् व्युत्थान होता है। दूसरे सूत्र में, नीचे उतर कर, प्राण और बुद्धि दोनों के विभुत्वरूपी तेल के सिंचन से प्रभावित हो कर समता की प्राप्ति द्वारा विश्व में समदर्शिता प्राप्त करने की बात कही गयी है।

मध्येऽवरः प्रसवः ॥२३

इस सूत्र में बीच की दशा का, जब कि केवल प्राण का (चित्त को साथ लिये बिना) लय होता है, वर्णन है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रश्नोपनिषद् के तीसरे प्रश्न की तीसरी श्रुति का पद है— 'मनोऽधिकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे' अर्थात् शरीर में प्राण आध्यात्मिक रूप से मन के अधीन हो कर आता है। इसीलिए मन जिस विषय का चिन्तन करता है, प्राण की गति भी तद्विषयाभिमुखी होती है। यदि ध्यानावस्था में चित्त संसार के विषयों का चिन्तन करता हुआ निरुद्ध होता है तो वह प्राण की गति को रोकता है और समष्टि प्राण तक पहुँचने में बाधा डालता है अर्थात् दोनों बीच में ही रह जाते हैं। इसलिए भगवान् उपदेश करते हैं—

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चदपि चिन्तयेत् ।

मन को आत्मा में अचल करके अन्य किसी भी वस्तु का चिन्तन न करे। क्योंकि समाधि अवस्था में पहुँचने से पूर्व ही, बीच में ही, नीचे (अवरः) रह जायेगा,— प्रसव अर्थात् प्रभव या व्युत्थान होने के कारण। ऐसे योगी को ही योगभ्रष्ट योगी कहा जाता है।

मात्रास्वप्रत्यय संधाने नष्टस्य पुनरुत्थानम् ॥२४

ऐसे योगभ्रष्ट योगी को यहाँ नष्ट कहा है और उसके पुनरुत्थान के लिए साधन बताया है कि शब्द, स्पर्शादि मात्राओं में उनके ज्ञान से अविरति रख कर संधान करना चाहिए अर्थात् इन्द्रियों के विषयों से प्रत्याहारपूर्वक चित्त को शुद्ध रखते हुए आत्मचिन्तन करना चाहिए।

शिवतुल्यो जायते ॥२५

ऐसा योगी शिवतुल्य हो जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

शरीर वृत्तिर्व्रतम् ॥२६

उसकी सारी चेष्टाएँ व्रतरूप हैं।

कथा जपः ॥२७

उसका सारा बोलना जप है।

दानमात्मज्ञानम् ॥२८

आत्मज्ञान उसका दान है क्योंकि आत्मस्थित होने से वह आत्मप्रचार के लिए प्रकाशस्तम्भ हो जाता है। उससे आत्मज्ञान प्रस्फुरित होता है (Radiates spiritual light)।

योऽविपस्थो ज्ञहेतुश्च ॥२९

'अविपस्थ' शब्द विप् धातु से बना है जो विक्षेप अर्थ में आता है, इसलिए अविपस्थ अर्थात् विक्षेपरहित स्थिर अवस्था में स्थिति स्वतः आनन्दरूप तो है ही, साथ ही ज्ञान का भी कारण होती है क्योंकि चंचल मन में ज्ञान बिखरा हुआ रहता है और समाहित अवस्था में घनाकार होता है।

स्वशक्ति प्रचयोऽस्य विश्वम् ॥३०

यहाँ पर 'स्व' से चेतनरूपा ज्ञान शक्ति और शक्ति से प्राण शक्ति दोनों का समावेश है। यह कहा जा चुका है कि व्यष्टिरूप से दोनों भिन्न होते हुए भी समष्टि महत् में भेदरहित एकात्म हो जाते हैं। शिवतुल्य योगी का चित्त महत् में प्रतिष्ठित हो जाता है और वह चित्ताकाश से महत् चिदाकाश में उठ जाता है, किन्तु उसके लिए माया मल बना रहता है,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसलिए उसे शिवरूप न कह कर शिवतुल्य ही कहा गया है। शिव विश्व में रहते हुए भी निरुपाधिक हैं, परन्तु यह योगी अपनी शक्ति के प्रचय (स्फुरण) रूप विश्व की उपाधि से युक्त है अर्थात् उस योगी के लिए सारा विश्व उसके अपने अहम् और इदम् के स्फुरण रूप ही होता है।

स्थितिलयौ ॥३१

व्युत्थान दशा में उसकी अवस्था स्थितप्रज्ञ की रहती है और समाधि अवस्था में लय की, जैसा कि कठोपनिषद् में कहा है—'योगो हि प्रभवाप्ययौ।'

गीता में भी—'एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ'—से इसी स्थितप्रज्ञ अवस्था की ओर संकेत है।

इस सूत्र द्वारा पहले सूत्र का स्पष्टीकरण किया गया है अर्थात् व्युत्थान दशा में वह योगी स्थिति रूपी अपनी शक्ति के प्रचय द्वारा शिव का दर्शन और समाधि अवस्था में उसका लय करता है।

तत्प्रवृत्तावप्यनिरासः संवेतृभावात् ॥३२

'तत्' पद से यहाँ ३०वें सूत्र में कहा हुआ 'अस्य विश्वं' लेना चाहिए। उस विश्व में प्रवृत्त हो कर भी उससे निरस्त नहीं हुआ क्योंकि उसमें संवेदन का भाव रहता है अर्थात् उस का माया-मल निरस्त नहीं होता।

'अहम् ब्रह्मास्मि' महावाक्य में जीव-ब्रह्म का एकत्व कहा गया है। 'अहम्' पद में अहंता अथवा अस्मिता की उपाधि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

बताई गयी है अर्थात् अहम् की उपाधि से युक्त होने के कारण वह जीव है, अहम् की उपाधि निरस्त होने पर वह ब्रह्म है। स्थूल देह के स्तर पर देहाभिमानी 'अहम्' कर्मेन्द्रियों की क्रिया का अभिमान करके कर्तामल से युक्त होता है। ज्ञानेन्द्रियों और मन से युक्त सुख-दुःख के भोगों का अभिमानी 'अहम्' भोक्तृत्व मल से युक्त होता है। उससे ऊपर चित्त का अभिमानी 'अहम्' आणवमल से युक्त होता है। चित्त के महत् में लीन होने पर चित्त की अहंता, (अणुत्व) का तो त्याग कर देता है, परन्तु उस में भेदबुद्धि निरस्त नहीं होती।

शक्तिपात् द्वारा जिन साधकों की कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो कर क्रियाएँ करने लगी है, उनमें आणवमलयुक्त 'अहम्' अपने अन्दर एक दूसरी चेतना शक्ति का अनुभव करने लगता है जिसमें साधक ज्ञान सहित द्वितीय अहम् को अनुभव करता है। उसके ऊपर लक्ष्य रख कर उस साधक का कर्तापन क्षीण होने लगता है और इसी प्रकार शनैः-शनैः भोक्तापन भी क्षीण होता रहता है। शाम्भवोपाय में कथित 'चैतन्यमात्मा' के अनुसार उसका अहम् चित्त से चिदाकाश में उठ जाता है, परन्तु आणवोपाय में तदर्थ नाड़ी-शुद्धि, भूतजय इत्यादि क्रम से समाधि द्वारा जाग्रत अवस्था को तैलवत् सींचते-सींचते शब्द, स्पर्श रूपी मात्राओं की आसक्ति से मुक्त होने पर शिवतुल्य अवस्था की प्राप्ति होती है। यह अवस्था शाम्भवोपाय में शक्तिपात् द्वारा शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है।

सुखासुखयोर्बहिर्मननम् ॥३३

ऐसे योगी को सुख-दुःख रूपी भोक्तृत्व मल के संस्कारों से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

छूटने के लिए मनन द्वारा सुख-दुःख दोनों को अपने स्वरूप से पृथक् समझना चाहिए।

श्रवण, मनन और निदिध्यासन वेदान्त-साधन-प्रणाली के मुख्य साधन हैं। श्रवण की गति श्रवणेन्द्रिय से मन तक और मनन की गति मन से बुद्धि तक होती है तथा बुद्धि की स्थिरता सम्पादित होने के पश्चात् मनन निदिध्यासन का रूप धारण कर लेता है जो ३१वें सूत्र (स्थितिलयौ) में स्थिति शब्द से बताया गया है। इस प्रकार सुख-दुःख को विजातीय समझ कर मनन की परिपक्व अवस्था अर्थात् निदिध्यासन में आत्मस्थिति के लिए प्रवृत्ति होती है।

तद्विमुक्तस्तु केवली ॥३४

भोक्तृत्व भाव से मुक्त होने पर अणुत्व भी समाप्त हो जाता है और आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में केवलीभाव को प्राप्त होता है।

मोह प्रतिसंहतस्तु कर्मात्मा ॥३५

क्योंकि अहम् रूपी मोह से युक्त देहाभिमानी कर्मात्मा होता है।

सांख्य अहम् को ही मोह कहता है। अहंभाव के स्थूल, सूक्ष्म स्तर ऊपर बता आये हैं। तब सोपाधिक अहंता का त्याग कर के केवली अवस्था में प्रज्ञानात्मा रूपी अहम् रह जाता है।

भेदतिरस्कारे सर्गान्तरकर्मत्वम् ॥३६

भेद का तिरस्कार होने पर पूर्व सूत्रोक्त कर्ताभिमान में क्या अन्तर होता है ? यह इस सूत्र में बताया गया है। भेद दो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकार का होता है—अभ्यन्तर और बाह्य। जीव और ईश्वर का भेद अभ्यन्तर एवं दृश्य में नानात्व देखना बाह्य भेद है। जब तक मनुष्य को ईश्वर की सत्ता का अनुभव नहीं होता, तब तक यह भेद बने रहते हैं और ईश्वरवादियों का ईश्वर परम्परागत संस्कारों के आधार पर कल्पना मात्र, श्रद्धा और विश्वास का विषय रहता है। साधक जब ईश्वर की सत्ता का अनुभव करता है, तब भेद की पृष्ठभूमि में सर्वव्यापी परमात्मा की सत्ता के आधार पर भेद में अभेद का अनुभव करता है और ज्यों-ज्यों जीव का अणुभाव कम होता जाता है, त्यों-त्यों भेद-दृष्टि भी कम होती जाती है।

जीवभाव के सर्वथा क्षीण हो जाने पर भेदबुद्धि का अभाव और अभेद-बुद्धि का उदय होता है। इसीलिए बुद्धि के भेद-बुद्धि, भेदाभेद बुद्धि और अभेद-बुद्धि—तीन स्तर माने जाते हैं। जब तक भेदबुद्धि की प्रधानता और अभेदबुद्धि गौण रूप से रहती है, मोहजन्य-कर्तृत्वाभिमान विद्यमान रहता है। परन्तु जब अभेद-बुद्धि की प्रधानता का उदय होता है और भेद-बुद्धि गौण रह जाती है तो जीव का कर्तृत्वाभिमान भी क्षीण होने लगता है और ईश्वर-शरणागति का वास्तविक स्वरूप अनुभवगम्य होता है। इसी को योगदर्शन में ईश्वरप्रणिधान कहा है।

यहाँ तिरस्कार शब्द इस बात का द्योतक है कि ईश्वरभाव के प्रकट होने पर साधक की भेद-बुद्धि गौण रूप से तिरस्कृत तो होने लगी है, परन्तु उसका अभाव नहीं हुआ है। ऐसे साधक के कर्म में असाधारण दिव्यता आ जाती है। सर्गान्तर का अर्थ नैसर्गिक समझना चाहिए, क्योंकि बिना देह की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सहायता के अपनी दिव्य इन्द्रियों द्वारा उसको इच्छानुसार कर्म करने की शक्ति आ जाती है, जैसा कि अगले सूत्र में कहा गया है—

करणशक्तिः स्वतोऽनुभवात् ॥३७

देह के आश्रित कार्य करने के कारण सामान्य मनुष्य को इन्द्रियों की स्वतन्त्र शक्ति का अनुभव नहीं होता, किन्तु उस योगी को इन्द्रियों की देह से स्वतन्त्र शक्ति का स्वत: अनुभव होने लगता है।

इन्द्रियों की शक्ति त्रिपदी कही जा सकती है—(१) शरीर के गोलकों के आधार पर सामान्य शक्ति, (२) शरीर के आश्रित स्वतन्त्र दिव्य शक्ति, और (३) शरीर का आश्रय त्याग कर प्रातिभादि दिव्य शक्ति। योगदर्शन के विभूति पाद के ३३वें सूत्र पर व्यास जी अपने भाष्य में लिखते हैं कि प्रातिभ ज्ञान सूर्योदय से पूर्व ऊषा की प्रभावत् विवेकज ज्ञान का पूर्व रूप है जिसके द्वारा योगी सब कुछ जानता है। पूर्व सूत्र में कथित स्वतन्त्र ज्ञान से प्रातिभ ज्ञान ही कहा गया है। योगदर्शन के अनुसार (विभूति पाद, सूत्र ३६) प्रातिभ ज्ञान के अन्तर्गत श्रवण अर्थात् दिव्य श्रवण शक्ति, वेदन अर्थात् दिव्य स्पर्श शक्ति, आदर्श अर्थात् दिव्य दर्शन शक्ति, आस्वादन अर्थात् दिव्य रस शक्ति और वार्ता अर्थात् दिव्य वाक् शक्ति के नाम कहे गये हैं। ये समाधि के लिए विघ्न हैं और व्युत्थान दशा में सिद्धियाँ हैं।

उक्त प्रातिभ-संज्ञक करण-शक्तियों को इन्द्रियों की स्वतन्त्र अर्थात् दिव्य शक्ति कहा गया है। आगे चल कर योगदर्शन के ४३वें सूत्र के भाष्य में व्यास जी ने कहा है कि यदि मन शरीर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

में प्रतिष्ठित रह कर उक्त प्रातिभ शक्तियों से दूरस्थ विषयों का ज्ञान प्राप्त करता है तो यह मन की कल्पिता वृत्ति कहलाती है और यदि शरीर की अपेक्षा छोड़ कर दूरस्थ विषयों का ज्ञान प्राप्त करता है तो मन की यह बहिर्मुखी वृत्ति अकल्पिता कहलाती है।

त्रिपदाद्यनुप्राणनम् ॥३८

उपरोक्त कल्पिता और अकल्पिता इन्द्रिय-शक्तियों के अनुसार उस योगी की कर्मेन्द्रियों (जिन्हें प्राणेन्द्रियाँ भी कहते हैं) की क्रिया को यहाँ 'अनुप्राणनम्' कहा गया है अर्थात् उस योगी की शारीरिक और कर्मेन्द्रियों की चेष्टाएँ पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के उपरोक्त त्रिपदादि ज्ञान के अनुसार प्रभावित होती हैं। 'शिवसूत्र-विमर्षिणी' में त्रिपाद का अर्थ सृष्टि, स्थिति और संहार लिया गया है।

चित्तस्थितिवच्छरीरकरणं बाह्येषु ॥३९

चित्त की स्थिति के अनुसार शारीरिक इन्द्रियों की क्रिया बाह्य विषयों में अनुप्राणित होती है। उक्त त्रिपदादि करण शक्ति के आधार पर प्रमाता-प्रमाण-प्रमेय, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय और ध्याता-ध्यान-ध्येय त्रिपुटियों के अनुसार चित्त की स्थिति उत्तरोत्तर उँची समझनी चाहिए।

अभिलाषात् बहिर्गतिः संवाह्यस्य ॥४०

संवाह्य से प्रमेय, ज्ञेय अथवा ध्येय का अभिलाषी योगी समझना चाहिए। 'शिवसूत्र-विमर्षिणी' में संवाह्य का अर्थ जीव लिया है। इसीलिए जीवत्व अथवा अणुत्व होने के कारण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसका लक्ष्य ध्येयाभिमुख रहता है अर्थात् ध्येय या ज्ञेय वस्तुओं में सुख की अभिलाषा करता है।

ऐसा योगी अपने अभिलषित बाह्य पदार्थ को प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म देह द्वारा बहिर्गति प्राप्त करता है। यह अकल्पिता वृत्ति की सिद्धि के पश्चात् ही सम्भव है। ऐसे योगी को परकायप्रवेश की भी सिद्धि प्राप्त हो जाती है। परकाय-प्रवेश की योग्यता से पूर्व उसका जीवन नष्ट नहीं होता। सूक्ष्म शरीर से बाहर गति होने पर भी उसमें देहासक्ति बनी रहती है। व्यास जी योगदर्शन पर अपने भाष्य (विभूति पाद, सूत्र ४३) में कहते हैं कि इस अकल्पिता महाविदेहा नामक वृत्ति को प्राप्त योगी परशरीर में प्रवेश करता है और उसके प्रकाशस्वरूप बुद्धि सत्व पर जो तमोजन्य क्लेश-कर्म-विपाक का आवरण था, वह क्षीण हो जाता है। यही बात अगले सूत्र में इस प्रकार कही गयी है—

तदारूढ़प्रमितेस्तत्क्षयाज्जीव सक्षयः ।।४१

प्रमाता, प्रमाण, प्रमेयरूपी प्रमिति के कारण इस प्रकार के योगारूढ़ योगी की ४०वें सूत्रोक्त बहिर्गति होती है तथा उस प्रमिति के कार्यरूप अभिलाषा के क्षय होने पर जीवभाव का सम्पूर्ण क्षय हो जाता है।

भूतकञ्चुकी तदाविमुक्तो भूयः पतिसमः परः ।।४२

तत्पश्चात् पञ्चभूत और कञ्चुकी (काल, कला, नियति, विद्या, राग) से मुक्त हो कर पशुपति के समान परशिव हो जाता है। २५वें सूत्र में शिवतुल्य कहा था। यहाँ शिवस्वरूप हो जाता कहा है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

नैसर्गिकः प्राणसम्बन्धः ॥४३

अब शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि से उस योगी का जो सम्बन्ध है, वह स्वाभाविक प्राण का सम्बन्ध मात्र है अर्थात् वह जीवनमुक्त है।

नासिकान्तर्मध्यसंयमात्मित्रसव्यापसव्यसौषुम्णेषु ॥४४

ऐसे योगी को नासिका के अन्तर और मध्य, इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना में संयम करने से कुछ प्रयोजन नहीं रहता।

भूयः स्यात् प्रतिमीलनम् ॥४५

उस योगी की दृश्य के प्रति उन्मीलन अवस्था (व्युत्थान दशा) फिर न आवे, न आवे !

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपसंहार

यह कहा जा चुका है कि यह दर्शन जीव-ब्रह्म की एकता अर्थात् अद्वैतवाद का प्रतिपादक है, परन्तु साधक के दृष्टिकोण को समक्ष रख कर यह साधन-क्रम पर भी प्रकाश डालता है जिसके द्वारा वह जीवभाव को छोड़ कर ब्रह्मभाव प्राप्त कर सके। इस शास्त्र में जीव को पशु की और ब्रह्म को पशुपति की संज्ञा दी गयी है अर्थात् मनुष्य में पशु, देव और ब्रह्म सभी भाव देखे जाते हैं। गीता ६, १२ में तो राक्षसी और आसुरी भाव भी कहे गए हैं।

पातञ्जल योगदर्शन पर वृत्तिकार लिखते हैं कि क्षिप्तचित्त, रजोगुण के उद्रेक से अस्थिर, बहिर्मुख, सुख-दुःखादि विषयों के विक्षेपों में फँसा रहने वाला मन दैत्य-दानवों का होता है। तमोगुण के उद्रेक से कृत्याकृत्य (कौन-सा कार्य करना योग्य है और कौन-सा नहीं) के विवेक से रहित तथा क्रोधादि भावों के कारण विरुद्ध ही सोचने वाला मन राक्षस-पिशाचों का होता है। सत्वगुण के उद्रेक से सुख और दुःख के साधनों में विवेक-पूर्वक प्रवृत्त होने वाला मन देवताओं का होता है। अंग्रेजी में भी कहावत है— 'Man is a rational animal or man

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

is dattan or man is divine'। साधक को आसुरी और राक्षसी भावों से मुक्त होना ही चाहिए।

साधक सत्वगुण का आश्रय लेकर पशुभाव से देवभाव की ओर अग्रसर होना चाहता है। इस दर्शन में भैरवीभाव (१/५), वीरेश या वीरभाव (१/११), कुमारी (बाला) रूपा इच्छा-शक्तियुक्त शाक्तभाव (१/१३,) अपशुशक्ति भाव (१/१६), शिवावस्था भाव (२/५), सिद्धभाव (३/१३), शिवतुल्यभाव (३/२५), केवलीभाव (३/३४), शिवभाव (३/४२) कहे गये हैं जिन को पशुभाव और शिवभाव के मध्य साधन-सोपान कहना चाहिए।

जो मनुष्य देह के भोगों को ही जीवन ध्येय मानता है, वह एक समझदार पशु ही है। उपनिषदों में भी मनुष्य को 'देवानां पशु' कहा गया है। पशु को बाँधने के लिए पाश होते हैं। वास्तव में मोह रूपी राग ही मुख्य पाश है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्यादि के रूप में प्रकट होता है। जब मनुष्य काम, क्रोधादि किसी के भी आवेश में आता है तो उस समय उसी भाव के तद्रूप हो जाता है। इन को मनुष्य की पाशविक शक्तियाँ भी कहा जाता है। साधक इन सब पर जय प्राप्त करने का यत्न करता है जो आणवोपाय का विषय है। परन्तु शक्तिपात द्वारा शुद्ध शक्तिरूप कुण्डलिनी के जाग्रत होने पर यही पशु शक्तियाँ सूत्र ३/१९ में कही हुई अपशु अर्थात् दिव्य शक्ति में परिवर्तित हो जाती हैं (सूत्र १/१६)। आणवोपाय में 'चित्तमात्मा' यह संकेत करता है कि आत्मा की चेतन सत्ता चित्ताकाश पर प्रतिभासित होने से अणु हो गयी है

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

और चित्त में स्फुरित अहंभाव पशुओं से लेकर देवताओं तक सब में देखा जाता है।

देहाभिमान जितना दृढ़ होता है, उतनी ही पशुभाव की वृद्धि होती है। देह से उठ कर सूक्ष्म स्तरों पर पशुभाव की क्षीणता होने लगती है। शक्तिपात् द्वारा देवात्म शक्ति की जागृति साधक को दैवी शक्ति की अनुभूति करा देती है। यद्यपि ये दोनों भाव बहुत उँचे स्तर तक तब तक बने रहते हैं जब तक कि अपशुशक्ति की जागृति न हो जाय। शांभव भाव में यही शक्तियाँ शिवभाव में परिणित हो जाती हैं, इसीलिए इनको सूत्र १/४ में ज्ञानात्मिका मातृका शक्ति कहा गया है।

पशुभाव में बुद्धिसत्व पर देहासक्ति, देह के भोगों की आसक्ति और भोगों की वासना के संस्कार रहते हैं जो रजोगुण और तमोगुण प्रधान होते हैं। भौतिक देह पञ्चभूतों का निर्मित है जो विराट् के तमोगुणी अहंकार का परिणाम है। इन्द्रियाँ राजसिक अहंकार और मन सावित्क अहंकार की विकृतियाँ हैं। आणव मल के दो स्तर कहे जा सकते हैं,—पाशविक पाश के बन्धनयुक्त और शुद्ध सत्व गुण के स्वरूप पञ्चकञ्चुकीयुक्त (अर्थात् मायामल युक्त)। इसीलिए साधक के उन्नतिपथ का पहला स्तर पशुभाव से मुक्त होना है जो शुद्ध तत्त्व के अनुसन्धान द्वारा सम्पन्न होता है। उसके ऊपर शुद्ध विद्या के उदय होने (सूत्र १/२१) अर्थात् माया के पाँच कञ्चुकों के हट जाने पर मायामल अणुभाव की निवृत्ति होती है।

यहाँ साधन के दो मार्ग कहे गये हैं—एक शक्तिपात् रहित दूसरा शक्तिपात के पश्चात् कुण्डलिनी शक्ति की जागृति

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सहित। प्रथम श्रेणी का साधक मन्त्रादि की दीक्षा द्वारा यत्न-पूर्वक साधन करता है। अष्टाङ्गयोग, लय योग, देवपूजा, अनुष्ठानादि जो क्रिया-साध्य हैं, इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। यह आणवोपाय है। शक्तिपात-दीक्षा शक्तिपात का सामर्थ्य रखने वाले किसी गुरु से ही मिल सकती है जिससे शिष्य की कुण्डलिनी शक्ति की जागृति होती है। इसे शाक्तोपाय और शाम्भवोपाय दो स्तरों तक बाँटा गया है।

शक्ति के जागृत होने पर साधक का पशु एवं आणव भाव तुरन्त नष्ट नहीं होता, शांभवोपाय तक बना रहता है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। ऐसा भी देखा गया है कि किसी-किसी तीव्र साधक की कुण्डलिनी शक्ति देवानुग्रह से बिना शक्तिपात के ही जागृत हो जाती है, परन्तु उससे उसकी भ्रान्ति नहीं जाती और किसी-किसी में अनेक विघ्नों के कारण वह विकृत रूप भी धारण कर लेती है। उसे चाहिए कि किसी शक्तिपात वाले समर्थ गुरु से दीक्षा ग्रहण करे। यही बात 'गुरुरुपाय' (२/६) में कही गयी है। जैसा कि इस सूत्र से प्रकट होता है, शांभवोपाय और शाक्तोपाय के लिए गुरु-कृपा ही एक मात्र उपाय है।

गुरु अपने संकल्प, स्पर्श, मन्त्र अथवा दृष्टि द्वारा, दीपक से दीपकवत्, अपनी शक्ति से शिष्य की सुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर देता है। ऐसा भी देखा गया है कि बिना उपरोक्त स्पर्श, मन्त्रादि के गुरु के केवल संकल्प मात्र से भी अधिकारी शिष्य की कुण्डलिनी जागृत हो जाती है। स्पर्श से स्थूल दीक्षा, मन्त्र से सूक्ष्म, अवलोकन द्वारा सूक्ष्मतर और केवल संकल्प द्वारा सूक्ष्तम दीक्षा कही गयी है। इनके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिणामस्वरूप अनुभवों में तारतम्यता होती है । शिष्यों में भी दो प्रकार के अधिकारी कहे गये हैं। एक वे जो अपना ही कल्याण कर सकते हैं और दूसरे वे जिन्हें गुरु के आशीर्वाद-स्वरूप शक्तिपात का सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है। इस विषय की जानकारी के लिए तद्विषयक शास्त्रों का अवलोकन करें।

कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर साधक शक्ति के आश्रित हो जाता है। कुण्डलिनी शक्ति का विकास तथा साधक की प्रगति एवं उन्नति परस्पर सम्बन्धित हैं। कुण्डलिनी की सुप्तावस्था में मनुष्य की काम-क्रोधादि शक्तियाँ पाशविक स्तर पर रहती हैं। शक्ति के जागृत होने पर यद्यपि एकदम उनका उन्मूलन नहीं होता, पर युगपद से ब्राह्मी आदि शक्तियों का अनुभव होने लगता है जो पाशविक भावों से साधक की रक्षा करने में सहायक होती हैं। इसीलिए इन्हें 'पशुमातरः' (३/१९) कहा गया है।

साधक जितना ही अन्तर्गुरुरूपी जागृत शक्ति की शरण रह कर आत्मनिवेदन करता जाता है, उतना ही वह शांभव भाव को प्राप्त करता जाता है। शाक्तोपाय के स्तर पर शक्ति का रूप क्रियाओं द्वारा अनुभव में आता है, परन्तु शांभव भाव में शक्ति गुरु तत्त्व के रूप में प्रकट हो जाती है, मानो दो मित्र साथ-साथ रहते हैं जिनमें से एक मुक्त है और दूसरा बन्धन में है। सहवास से बन्धनयुक्त बन्धनमुक्त की साम्यता प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार गुरुतत्त्व जिसे श्रुति-वचनों में—'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'—कहा गया है, प्रकट हो जाता है। साधक उसके दर्शन, शरण और आत्मनिवेदन द्वारा उसकी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

परम साम्यता को प्राप्त होता है अर्थात् शिवतुल्य हो जाता है।

जो कुछ कहा गया है उससे पाठकों को स्पष्ट हो गया होगा कि कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर साधक जो लक्षण अनुभव करता है, उनके अनुसन्धान द्वारा जागृत शक्ति का अनुसन्धान होता है। शक्ति जागृत होने पर देवात्म रूप में व्यक्त होती है जो उसका शुद्ध स्वरूप है। १/१६ सूत्र में जहाँ शुद्ध तत्त्व के अनुसन्धान द्वारा अपशु शक्ति की जागृति का कथन है, वहाँ शुद्ध तत्त्व से शक्ति की जागृति के पूर्व हृदयादि स्थानों के अनुसन्धान द्वारा ईश्वर की काल्पनिक सत्ता पर ध्यान अभिप्रेत है जिसका फल सूत्र १/१५ में चित्त के अन्तर्मुखी होने के कारण दृश्य का स्वप्नवत् दीखना कहा गया है।

पाँचों कलाओं में शान्तातीता में शिव-शक्ति, शान्ति कला में सदाशिव-ईश्वर और शुद्धविद्या में शुद्ध तत्त्व कहा है जिनके स्थान क्रमशः आज्ञा, विशुद्ध और अनाहत चक्र हैं। इनसे नीचे विद्या कला में माया के पाँच कञ्चुकों में से काल, कला, नियति को भी शुद्ध तत्त्व कहा गया है। 'क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्' (योग दर्शन ३/५२) अर्थात् काल के क्षण और उनके क्रम पर संयमरूपी अनुसन्धान द्वारा विवेकज ज्ञान होता है।

इसी प्रकार अनन्त आकाश, अनन्त समुद्र की जलराशि अथवा अनन्त समय पर ध्यान करने का भी विधान है जैसा कि योगदर्शन सूत्र २-४७ में अनन्त में चित्त समाहित होने पर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रयत्न की शिथिलताक ही गयी है। परन्तु कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर साधक के अनुसन्धान के अभ्यास के अनुपात से उसकी अपशु शक्ति की जागृति होती है। कुण्डलिनी शक्ति की क्रियाओं पर साधक का लक्ष्य हठात् जाता है और उसके लक्ष्यानुसन्धान द्वारा कुण्डलिनी की जागृति और पशुशक्ति की क्षीणता साधक के अनुभव में आती है। आगे शुद्ध विद्या के उदय से १/२१ में कही गयी चक्रेशत्व सिद्धि के अनुसार उत्तर स्तर पर जब कुण्डलिनी शक्ति शुद्ध विद्या के रूप में उदय होती है, तब उसको छहों चक्रों की सिद्धियाँ आ जाती हैं। इसके लिए साधक शिवसंहिता का पञ्चम पटल देखें।

❀ ॐ तत्सत् ❀

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

योगश्री पीठ आश्रम : संक्षिप्त परिचय

योगश्री पीठ आश्रम की स्थापना ब्रह्मलीन श्री १००८ श्री स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज ने सन् १९६५ में की थी। उनकी गङ्गा जी के प्रति अपार श्रद्धा थी, अतः वे इसी आश्रम पर वर्ष में अधिकांश निवास करते थे। यह आश्रम हिमालय की गोद में पतित पावनी गंगा जी के तट पर स्थित तपःस्थली है। यहाँ अष्ट-प्रहर 'शिव-शिर-मालति-माल' भागीरथी 'हर-हर-हर' की ध्वनि से सम्पूर्ण घाटी को गुञ्जित करती रहती है। आश्रम के किसी भी भाग से सुरम्य घाटी का नयनाभिराम दृश्य एवं माँ गंगा के दर्शन स्वतः ही होते रहते हैं।

आश्रम का ट्रस्ट शक्तिपात सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन भी करता है जिसका मूल उद्देश्य मुमुक्षुओं को ब्रह्मलीन श्री १००८ श्री स्वामी नारायणतीर्थ देव जी महाराज द्वारा प्रणीत सिद्ध साधन शक्तिपात का ज्ञान कराना है। योगश्री पीठ ट्रस्ट (प्रकाशन) द्वारा शक्तिपात सम्बन्धी प्रकाशित ग्रन्थों की सूची यहाँ दी जा रही है।

ऋषिकेश भारत का तीर्थ स्थान ही नहीं, अपितु आध्यात्मिक केन्द्र भी है, जहाँ देश के ही नहीं, विश्व भर के जिज्ञासुओं, यात्रियों का आवागमन बना रहता है। उत्तर भारत के चारों धामों यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ एवं बदरीनाथ की यात्रा भी यहीं से प्रारम्भ होती है।

सचिव,

योगश्री पीठ ट्रस्ट, मुनीकीरेती

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

योगश्री पीठ ट्रस्ट की प्रकाशन-सूची

(श्री १००८ स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज कृत)

१. शक्तिपात—परम्परागत शैवी शक्ति-सम्पात के विधान एवं योग-विज्ञान के दार्शनिक सिद्धान्तों का अपूर्व ग्रन्थ—मूल्य ७-०० ।

२. शिवसूत्र-प्रबोधिनी (शक्तिपात भाग २)—बन्धन, ज्ञान एवं मुक्ति का सर्वोत्तम सरल विवेचनापूर्ण काश्मीरी शैवदर्शन का दुर्लभ ग्रन्थ—मूल्य १०-०० ।

३. साधन संकेत—महायोग का साधन करने वाले साधकों के हितार्थ लिखे गये नियमों का सङ्कलन—मूल्य ३-०० ।

४. Devatma Shakti (English)—आंग्ल-भाषाविद् जिज्ञासुओं के लिए योग-शास्त्र-कथिता आधारभूता कुण्डलिनी महाशक्ति के विशेष विज्ञान का अपूर्व ग्रन्थ—मूल्य २५-०० । रैक्सीन बाइंडिग वाली प्रति—मूल्य ३०-०० ।

५. सौन्दर्य-लहरी (संशोधित एवं परिवर्धित)—पूज्यपाद श्री शङ्कराचार्य प्रणीत भगवती महामाया जगदम्बा की स्तुति के अतीव गूढ़ एवं आध्यात्मिक भावों से परिपूर्ण स्तोत्र-ग्रन्थ की श्री स्वामी जी महाराज द्वारा हिन्दी में टीका एवं आध्यात्मिक व्याख्या—मूल्य २५-०० ।

६. आत्म-प्रबोध श्री स्वामी जी द्वारा समय-समय पर लिखे गये विविध लेखों का सङ्कलन भाग १—मूल्य ५-०० । भाग २—मूल्य ७-०० । दोनों भाग संयुक्त १२-०० ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

७. **अध्यात्म-विकास**—श्री स्वामी जी महाराज द्वारा ज्ञान की सातों भूमिकाओं का सरल एवं प्रामाणिक वर्णन—मूल्य ८-०० ।

८. **वैदिक-योग-परिचय**—इस पुस्तक में वेदों के ही आधार पर योग का वास्तविक अर्थ, मार्ग और लक्ष्य दर्शाया गया गया है—मूल्य १०-०० ।

९. **प्राणतत्त्व**—दुर्विज्ञेय 'प्राण-तत्त्व' का दार्शनिक अध्ययन एवं स्पष्टीकरण—मूल्य ५-०० ।

१०. **पातञ्जल योग-दर्शन**—श्री स्वामी जी द्वारा योग-दर्शन की अति सरल व्याख्या—मूल्य ८-०० ।

११. **उपनिषद्-वाणी**—श्री स्वामी जी द्वारा प्रथम ११ उपनिषदों की हिन्दी भाषा में सरल व्याख्या एवं साधन-पक्ष का सशक्त विवेचन—मूल्य ३०-०० ।

१२. **गीता-तत्त्वामृत**—यद्यपि वर्तमान में गीता पर अनेकों टीकाएँ एवं अनुवाद उपलब्ध हैं, परन्तु साधन-पक्ष पर सबल प्रकाश डालते हुए जैसी यह टीका है, वैसी अन्य कोई नहीं है। मूल्य ३०-०० । प्लास्टिक के जाकेट सहित—मूल्य ३५-०० ।

१३. **प्रत्यभिज्ञा-हृदयम्**—क्षेमराजकृत काश्मीरी शैवदर्शन के सूत्रात्मक ग्रन्थ का सरल सटीक अनुवाद—मूल्य ३-०० ।

१४. **शक्तिपात-प्रश्नोत्तरी**—श्री स्वामी जी महाराज द्वारा दिये गये शक्तिपात साधन सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तरों का संग्रह (सम्पादक श्री स्वामी शिवोमतीर्थ जी महाराज)—मूल्य ८-०० ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्री शिवोम्प्रकाश ब्रह्मचारी (स्वामी शिवोम्तीर्थ जी) कृत

१५. साधन-पथ—अनुभूत सुझावों सहित साधन-सम्बन्धी आवश्यक ज्ञातव्य—मूल्य ५-०० ।

१६. श्री नारायण-उपदेशामृत—शक्तिपात्-प्रवर्तक परम गुरु श्री नारायणतीर्थ देव जी की संक्षिप्त जीवनी तथा प्रचुर साधन-सम्बन्धी ज्ञातव्य – मूल्य ८-०० ।

१७. गुरु-परम्परा—साधक-शिष्यों के लिए गुरु-शिष्य-सम्बन्ध की महत्ता, उसका निर्वाह तथा गुरु के समीप रहते समय शिष्य के कर्तव्याकर्तव्य का सुरुचिपूर्ण वर्णन—मूल्य ६-०० ।

१८. योग-विभूति—ब्रह्मलीन श्री १००८ स्वामी शङ्कर पुरुषोत्तम तीर्थ जी महाराज का साधनोपयोगी प्रेरणादायक जीवन-चरित्र—मूल्य ८-०० ।

१९. शक्तिपात-पथ-प्रदर्शिका—शक्तिपात साधन के सम्बन्ध में प्रचुर ज्ञातव्य तथा स्पष्टीकरण । भाग १—मूल्य ५-०० । भाग २—मूल्य २०-०० । भाग ३—मूल्य २०-०० ।

२०. A Guide to Shaktipat (English)—मूल्य १८-०० ।

२१. साधन-सम्पदा—श्री १००८ स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज के जीवन की साधनोपयोगी झाँकियाँ एवं प्रेरणा-दायक, पथ-प्रदर्शक बहुमूल्य उपदेश (श्री नारायणदत्त रावल कृत)—मूल्य ६-०० ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

२२. **रास-रहस्यम्**—श्री स्वामी चिन्मयानन्द गिरि द्वारा रासलीला का वेदान्त-परक अर्थ एवं रहस्य—मूल्य ५-०० ।

२३. **सौभाग्योदयम्**—डा० ताराचन्द गर्ग द्वारा गौड़पादाचार्य कृत सुभगोदय स्तुति का टीकानुवाद—मूल्य ८-०० ।

२४. **योगेन्द्र-चरित**—श्री १०८ योगेन्द्र विज्ञानी जी का जीवन-चरित—मूल्य ८-०० ।

२५. **योगिकसहस्रधारा**—श्री बालमुकुन्द पालीवाल द्वारा साधन में आये अनुभवों का सङ्कलन—मूल्य ५-०० ।

अन्य उपलब्ध ग्रन्थ—

२६. **षटचक्र-निरूपण**—६-०० । २७. **कुलार्णवतन्त्र**—१-५० ।

२८ **योगवाणी**—१२-०० । २९. **महायोग विज्ञान**—शक्तिपात सम्बन्धी भूतो न भविष्यति ग्रन्थ—३०:०० ।

३०. **गुरु-तन्त्र**—४-५० । ३१. **ज्ञान-भेरी**—२५-०० ।

३२. **द्वादशोपनिषद:**—२५-०० ।

टिप्पणी–(१) उद्धृत मूल्य परिवर्तनीय हैं ।

(२) धनादेश से आधा मूल्य अग्रिम प्राप्त होने पर ही शेष मूल्य की वी० पी० भेजी जा सकती है ।

(३) कमीशन केवल थोक आर्डर पर और पुस्तक-विक्रेताओं को ही दिया जाता है ।

(४) पैकिंग, फारवर्डिंग तथा डाक-व्यय मूल्य से अतिरिक्त लिया जायेगा ।

□

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal